

॥ श्री ॥

विद्याभवन-संस्कृत-ग्रन्थमाला

४६

भासनाटकचक्रे

चारुदत्तम्

'प्रकाश' संस्कृत हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकार —

साहित्यशास्त्राचार्य

श्री प० कपिलदेवगिरि



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१

प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी  
मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, वाराणसी  
प्रथम संस्करण, सन् २०१६  
मूल्य २—५०

सर्वेऽधिकारा प्रकाशकाधीना  
The Chowkhamba Vidya Bhawan  
Chowk, Varanasi.  
( INDIA )  
1960

## आत्म-निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक की व्याख्या करते समय छात्रबन्धुओं का समस्याओं की ध्यान में रखकर लम्बे एवं तन्त्रित शब्दों का समान विधि से ही अथ बोध कराने का प्रयास किया गया है। यथामन्त्र भाषा की सरल और शैली का विशेष बचाने की चेष्टा की गई है।

व्याख्या लिखने में तीन प्रयोगों में सहायता मिली है उनके संपर्कों व प्रकाशकों का मैं परम कृतज्ञ हूँ। एक अतिरिक्त गुरुदेव श्री प महादेव गान्गा ( मूलपूर्व प्रधानाचार्य व महाविद्यालय का हि वि वि ) श्री प० कान्तानाथ जा गान्गा तैलंग श्री प राममूर्ति त्रिपाठी जी जैसे महानुभावों से समय समय पर जो सक्रिय सहयोग मिला है उनके लिए आभारप्रदर्शन मात्र करना पृथ्ना होगी। श्री तैलंगजी ने अपने आप परिचय में ही अमित प्रेरणाओं का साथ जिन तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक सामग्रियों का ज्ञान कराया है वह उनके स्नहम आशी का प्रतीक है। बन्धुवर श्री शंकरदेव जा अन्तर न अपने व्यस्त समय में भी जिस मत्कर्ता के साथ हिन्दी पाण्डु लिपि की आद्यन्त पढ़ा उनका लिय उन्हें धन्यवाद देना उपचारमात्र होगा।

प्रकाशक महोदय जी को बहुत धन्यवाद है जिनकी प्रेरणा एवं दी हुई सविधा में इस व्याख्या की रचना की जा सकी है।

अन्त में निवेदन है कि महोदय एवं विश्व पाठक अपने सत्परामर्श द्वारा संपन्न की अनुग्रहोत्तर करेंगे।

फाल्गुनी पूर्णिमा  
म २०१६

कपिलदेव गिरि

# भूमिका

## महाकवि भास

ह्याति—महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्रख्यात एवं सम्मानित महाकवियों में से हैं। कालिदास ने अपने 'मालविकाग्निमित्र' नामक नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार(१) के मुख से स्पष्ट ही प्रश्न करवाया है कि प्रसिद्ध यशवाले भास, सौमिह, कविपुत्र आदि महाकवियों के प्रबन्धों का अतिक्रमण कर कालिदास की कृति का इतना अधिक सम्मान क्यों हो रहा है? इस कथन से भलीभांति प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में भास के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय थे। कालिदास के बाद के कवियों ने भी भास के नाटकों का अत्यन्त सम्मान किया है। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में इनके नाटकों की उत्कृष्टता बतलाते हुए कहा है कि भास ने सूत्रधार से आरम्भ किये गये, बहुत भूमिका वाले तथा पताका (रूपक की मुख्य अवान्तर घटना तथा ध्वजा) से शोभायमान देवकुलों की भांति अपने नाटकों से साहित्य-जगत् में अच्छी प्रतिष्ठा पाई। (२) राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में भास के नाटकों की अग्नि-परीक्षा तथा 'स्वप्नवासवदत्तम्' को सर्वोत्तम नाटक स्वीकार किया है। (३)

वाकपतिराज ने अपने 'गडउवहो' नामक प्राकृतभाषा के महाकाव्य में 'जलणमित्ते'—ज्वलनमित्र (अग्नि का मित्र) बताया है (४)। प्रख्यात आलंकारिक जयदेव ने भास को 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में कविताकामिनी का हास माना है (५)।

(१) 'प्रथितयशसा भाससौमिहकविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवे कालिदासस्य कृतौ बहुमानः'। (मालविकाग्निमित्रम्)

(२) सूत्रधारकृतारम्भेनाटकेषु भूमिकैः ।

सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ॥ (हर्षचरितम्)

(३) भासनाटकचक्रोऽस्मिन् चक्रैः क्षिप्ते परीक्षितुम् ।

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभूत् पावकः ॥ (काव्यमीमांसा)

(४) भासग्नि जलणमित्ते कन्तीदेवे तदापि रघुभारे ।

सौमन्धवे अ नन्धग्नि हारि भन्दे अ आगन्दो ॥ (गडउवहो)

(५) यस्याधोरधिकुरनिकर-कर्णपूरो मधूरो

भासो हास कविकुलपुरु कालिदासो विलासः ।

एषो एषो हृदयवसति पद्मबाण स नाम

केषा नैवा कथय कविताकामिनी कौतुकाय ॥ (प्रसन्नराघव)

उपयुक्त विचारों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अतीत काल में मयमाधारण क बीच भास क रूपकों की अधिक क्यानि एवं प्रचार था और उनक पृष्ठ नाटक-चक्र में स्वप्नवासवदत्तम् प्रधान था ।

संस्कृत साहित्य क एक विख्यात परि हाने पर भी बहुत दिनों तक विद्वानों क मध्य भास का केवल नाम ही सुना जाता था । इनक समय, प्रथम तथा जीवनपूष क विषय में ऐनामात्र भी ज्ञान नहीं था । कवल अनेक संस्कृत काव्यों और नाटकों में उनका नामोक्लेश्य एवं उद्धरण द्गरर ही अनुमान किया जाता था कि अतीतकाल में भास नामक कोई प्रख्यात नाटककार हो गया है । पूर्वी स्थिति अनक काव्यों की है त्रिनका कवल नाममात्र ही भवगगोचर होता ह जय कल्याणप्रण 'आम्बवतीचित्रय आदि; परन्तु महामौभाग्य की बात है कि १९१२ ई० में ट्रावनकोर क ए० डी० गगपति शास्त्री ने स्वप्नवासवदत्तम् आदि तेरह नाटकों का अनव्यपण कर अनन्तगयनप्रथमाला में प्रकाशित कराया और उह भास की अमंदिग्ध कृति बतलाई । उसी समय स भास और उनक रूपकों की चर्चा साहित्य तसार एवं महद्वय विद्वानों में होने लगी । श्री शास्त्री जी द्वारा अनुसंधान किए गए तेरह नाटकों में कवल स्वप्नवासवदत्तम् भासकृत हो मरना ह, क्योंकि राजभरर क पूर्वाक्ष निदश क अतिरिक्त आचाय अभिनय गुप्त ने भी 'अभिनयभारती म इम नाटक का उक्लेश्य किया है(१) । किन्तु हाय रूपकों का भास की रचना स्वीकार करने में कोई भी उत्कृष्ट प्रमाण नहीं ह एमा कुछ विद्वानों का मत है । किन्तु श्री शास्त्री जी ने इन रूपकों की प्रामाणिकता सिद्ध करने क लिये जो अकाट्य युक्तियों दी ह उनमें गंगा का लेशमात्र भी कारण नहीं ह । प्रकरणानुसार हमकी चर्चा आगे का जायगी ।

### भास का समय

महाकवि कालिदास न अपने नाटक मालविकाग्निमित्र में भास का यह सम्मान से नामोक्लेश्य किया है जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है । हमसे यह सिद्ध एवं सुस्पष्ट हो जाता है कि भास कालिदास से प्राचीन थे । कालिदास क समय क विषय में विद्वानों में मतभेद नहीं है । कुछ लोग महाकवि का समय ४०० ई० बताते ह । उनक कथनानुसार भास ४०० ई० से प्राचीन होते हैं । कुछ विद्वान् कालिदास की स्थिति प्रथम शतक निश्चित करते हैं । उनके आधार पर भास ईसा क प्रथम शतक से प्राचीन होते हैं । भास को इतना सवमाय हाने में कि कालिदास जैसे महाकवि भी उनका नाम शौर्य एवं प्रतिष्ठा से लें,

अवश्यमेव एक निश्चित समय लगा होगा। भास के १३ नाटकों के आविष्कारक एवं आश्रयदाता श्री रावणपति शास्त्री ने भास को पाणिनि और चाणक्य से भी प्राचीन बतलाने का प्रयत्न किया है। सैनिकों को लड़ाई के लिये प्रोत्साहित करने के प्रसङ्ग में चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' नामक ग्रन्थ में 'अपीह श्लोकौ भवत' का उल्लेख कर जिन दो श्लोकों को प्रमाणकोटि में स्थापित किया है उनमें से एक(१) भास के प्राप्त 'प्रतिज्ञायोगन्धरायणम्' में उपलब्ध होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि उक्त श्लोक को चाणक्य ने भास के नाटक से लिया है। इतिहासकारों ने चाणक्य का समय ई० पू० ४०० निश्चित किया है। पुनर्दर्थ भास ई० पू० ४०० से अर्वाचीन कदापि नहीं स्वीकार किए जा सकते।

भास के द्वारा रचित 'प्रतिमानाटक' में रावण के बृहस्पति(२)कृत अर्थशास्त्र में दृष्टता प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र चाणक्य से भी पहले का है। यदि वे कौटिल्य से बाद के होते तो बृहस्पतिरचित अर्थशास्त्र की जगह चाणक्यरचित अर्थशास्त्र का नामोल्लेख मिलता। बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र यह निर्देश करता है कि भास चाणक्य से भी प्राचीन थे। प्रयोगों की अपाणिनीयता यह बतलाती है कि पाणिनि के सर्वसम्मानित पद पर प्रतिष्ठित होने के पूर्व इन नाटकों का निर्माण हुआ था। कालिदास के प्राकृतों की अपेक्षा भास के प्राकृत अतीव प्राचीन प्रतीत होते हैं। भास के रूपकों से प्रतिभासित होनेवाली सामाजिक दशा मौर्यकालीन सामाजिक दशा के अनुरूप है। उक्त प्रमाणों के आधार पर भास का समय कम से कम ई० पू० पाँचवीं शताब्दी निश्चित होता है किन्तु अधिकांश समीक्षक इस सिद्धान्त से सहमत नहीं हैं। वे भास तथा चाणक्य के पद्य को किसी दूसरे ग्रन्थ का सङ्कलन बतलाते हुए उक्त मत को अप्रामाणिक सिद्ध करते हैं।

प्राकृतभाषा की आलोचना के आधार पर डा० लेस्ली, सुखथनकर इत्यादि पाश्चात्य और पौरस्त्य विद्वानों ने भास को कालिदास से तो प्राचीन बतलाया है, पर अश्वघोष से अर्वाचीन। साथ ही वे यह भी कहते हैं कि अश्वघोष की प्राकृत की छाया भास के रूपकों में पाई जाती है। उक्त विद्वानों की निजी धारणा के अनुसार कालिदास का समय पञ्चम शताब्दी था और वे अश्वघोष से बाद के कवि थे। अतएव वे कालिदास और अश्वघोष के मध्यकाल में

( १ ) नव शराव सलिले सुपूर्ण सुसरकृत दर्भकृतोत्तरीयम् ।

तत्तस्य मा भून्नरक च गच्छेत् यो मर्तुषिण्डस्थ कृते न युध्येत् ॥

( २ ) भी कश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधोये, मानवीय धर्मशास्त्र, माहेश्वर योगशास्त्र, बार्हस्पत्यमर्थशास्त्र, प्राचेतस श्राद्धकल्पः ।

भास की रीति मानकर उनका समय तृतीय शताब्दी स्वीकार करते हैं। भास के नाम के साथ जिन नाटकों का उल्लेख किया गया है उनका लेखक कोई अज्ञात दक्षिणी कवि होना चाहिये जिमकी रीति इमा के बाद सप्तम शताब्दी में उभरती है। पूर्वी कियन्ती है पर इस मत में भी विद्वग्जन रधि नहीं लेते। श्री टी० गणपति शास्त्री जी ने अनेक प्रमाणों से यह प्रमाणित किया है कि भास कवि ई० पू० चौथी शताब्दी में हुए थे और जय शास्त्री जी के द्वारा दिय गये प्रमाणों का गणहन करन के लिए कोई प्रयत्न प्रमाण उपलब्ध नहीं है ता ई० पू० चौथी शताब्दी का ही स्वीकार करना युक्तियुक्त होगा।

### जीवनी

भास के द्वारा रचित नाटकों के आदि या अन्त में कहीं भी ऐंगरु का नाम निर्देश नहीं है। पूर्वी रीति में महाकवि भास के जीवन का रहस्योद्घाटन करना सहज कार्य नहीं। पर उनके प्रर्थों का पर्येषण करने से जो निष्कप निकलता है उमी के आधार पर कवि की जीवनसम्यधी घटनाओं पर किश्चित् प्रकाश डाला जा सकता है। श्री पुमालकर जी की शत्रुघली में 'भास धमभीरु मात्स्य थ'। व दक्षिण के नहीं बहिर उत्तर भारत के अधिवासी थे। इसके प्रमाण में स्वप्नवासवदत्तम् और 'पालचरित का भरतवाच्य प्रस्तुत है—

इमां सागरपय तां हिमवदिभ्यकुण्डलाम् ।

महीमहातपग्राहो राजसिंह प्रधास्तु न ॥

प्रस्तुत भरतवाच्य में कवि परमात्मा से प्राथना करता है कि जिम पृथ्वी के दोनों हिस्सों में हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत दो कुण्डलों की भांति सुशोभित हैं, हमारे राजा सम्राट् उस वसुधरा के मध्य एकच्छत्र राज्य करें। प्रकृत रलोक में हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत को भगवती वसुधरा के कणकुण्डलों से उपमा दी है। भास ने दक्षिण कण (कान) विन्ध्य तथा वाम कर्ण हिमगिरि कक्षिपत किया है। भास की वसुधरा का विस्तार पूव से पश्चिम पट्यन्त है। उनकी पृथ्वी उत्तर में हिमालय पूव दक्षिण में विन्ध्य पट्यन्त है। यही पृथ्वी भास की पृथ्वी थी। इसी सीमा के अन्दर कहीं कवि का स्थान था। भास वर्णाश्रम-धर्म के पक्षपाती थे। देवता तथा वज्र से सम्बन्धित स्तोत्रों में उनकी आस्था थी। गौ को भी वे सम्मान की दृष्टि से देखते थे। वे किसी राजा के राजपण्डित थे। भास ने अपने राजा को 'राजसिंह' शब्द से अभिहित किया है। यह शब्द किसी व्यक्ति की स्तुति है या साधरणत राजमात्र का बोधक। यह श्रुति नहीं है। भास राजघराना एवं राजकीय जीवन से सुपरिचित थे। वे हास्यप्रिय तथा नम्र प्रकृति के थे। वे बातचीत की कला में निपुण मानव स्वभाव तथा प्राकृतिक सुन्दरता के

प्रेमी 'एवं चतुर पारखी थे।' सम्भव है कवि का पारिवारिक जीवन आनन्दपूर्ण एवं सुख-शान्तिदायक रहा हो। वे कर्तव्यपरायण पुत्र के पिता, साध्वी पत्नी के पति तथा सतानप्रिय पिता थे। अविभाजित-कुटुम्बप्रणाली के परिपोषक एवं गुरुजनों की प्रतिष्ठा करनेवाले थे। कवि के जीवन में आशा का प्रतिबिम्ब तथा राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है। वे स्वतन्त्रता तथा न्याय-परायणता के पक्षपाती एवं वैश्ववृद्धसावलम्बी थे। इन विशेषणों के आधार पर यही कहना पड़ता है कि भास संस्कृत साहित्य के एक विशिष्ट अध्येता एवं सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न कवि थे।

### ग्रन्थ

महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री जी ने भास के जिन तेरह रूपकों की खोज की है वे निम्नलिखित हैं—

१ प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, २ स्वप्नवासवदत्तम्, ३ प्रतिमानाटकम्, ४ पञ्च-रात्रम्, ५ अभिषेकनाटकम्, ६ मध्यमव्यायोगः, ७ अविमारकम्, ८ चासुदत्तम्, ९ कर्णभारम्, १० दूतवाक्यम्, ११ दूतघटोत्कचम्, १२ ऊरुभङ्गम् तथा १३ बाल-चरितम्।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—प्रतिज्ञायौगन्धरायण में कौशाम्बी के राजा घत्सराज उदयन द्वारा उज्जयिनी के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के हरण की कथा है। आखेट के प्रेमी राजा उदयन के कृत्रिम हाथी के छल से महासेन द्वारा पकड़े जाने पर उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण राजा को बन्धन से मुक्ति दिलाने और कुमारी वासवदत्ता के साथ उनका पाणिग्रहण कराने की प्रतिज्ञा करता है। मन्त्री की दृढ़ प्रतिज्ञा तथा कुटिल नीति का यह सर्वोत्कृष्ट निदर्शन है। इसी के आधार पर इस रूपक का नाम 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' पड़ा है।

५) स्वप्नवासवदत्तम्—भास की सभी कृतियों में यह सर्वोत्तम रचना है। इसे 'प्रतिज्ञानाटिका' का उत्तरार्थ ही समझना सगत एवं उचित होगा। इस रूपक में राजा उदयन का वासवदत्ता के साथ स्वप्नावस्था में शोग होता है। इसी आधार पर इस रूपक का नाम 'स्वप्नवासवदत्तम्' रखा गया है। प्रद्योत के राजमहल से वासवदत्ता का हरण कर लाने के बाद राजा उदयन विषयवासना में लिप्त हो जाता है और राजकीय कर्तव्यों में किसी प्रकार की रुचि नहीं लेता। ऐसी दशा में विरोधियों का होना स्वाभाविक ही है। राजा अरुणि को आक्रमण करने का सुअवसर मिल जाता है। उदयन को अपने शत्रुओं को परास्त करने के लिये मगधनरेश दशक की सहायता लेना अत्यावश्यक होता है। यौगन्धरायण वासवदत्ता के अग्नि में जल मरने का मिथ्या समाचार फैलाता है, परन्तु वास्तव में



उमड़े जाकर मगध के राजादण्ड की भगिनी पद्मावती के संरक्षण में रग्य आता है। कालान्तर में याम्भराज का पद्मावती के माय शुभ त्रिवाद हो जाता है। एक दिन राजा याम्यवदत्ता को स्वप्नावस्था में दृग्गता है और उसमें मिल्न के लिये अत्यन्त उत्सुक हो जाता है। उसके जीवित होने में त्रिभिव विश्वास होने लगता है। बाद में याम्यवदत्ता राजा के समक्ष लाई जाती है और दोनों का आनन्द मिलन होता है। इस विधि से इस रूपक का सुगमय पयवमान होता है।

**प्रतिमानाटक**—इस रूपक का आधार रामायण की कथा है। इसमें राम वनगमन सीताहरण आदि अयोध्याकाण्ड से आरम्भ होकर रावणवध पयन्त की घटनाओं का वर्णन किया गया है। इस नाटक के आधार पर अतीत भारत में छलितकलागम्यम्भी नृत्य कृत्त का मुख्याहन किया जा सकता है। अतीत काल में भारतीय नर्तकों के दृक्कुल हाते थे जिनमें मानवत्तिरि घट्टलन क बाद राजाओं की प्रणय की बड़ी मूर्तियाँ रगी जाती थीं। इषवाकुचदा क नर्तकों का भी दृक्कुल था जिनमें दिवगत राजाओं की प्रतिमायें रगी जाती थीं। राजा दारथ की भी मूर्ति दृक्कुल में रगी गई है। भारत ने अपने मासा क घर में छोडते समय नगर से बाहर दृक्कुल में रगी हुई अपने पिता दारथ की प्रतिमा को दग्गकर उनकी मृत्यु का अनुमान स्वयं ही कर लिया। इसी प्रतिमा क आधार पर इस रूपक का नाम प्रतिमानाटक है।

**पद्मरात्र**—महाभारत की कथा की एक घटना का लकर इस नाटक की रचना हुई है। दुर्योधन यज्ञ में गुरु द्रोणाचार्य को मनोषाक्षित वशिष्ठा दन क लिये उत्थन होता है। द्रोणाचार्य न पाण्डवों क निमित्त आधा राज्य देने क लिये पड़ा—इस क्षण पर त्रि पाच रात्रियों क भीतर पाँडव मिल जायगे तो यह उहै राय दे दगा। द्रोणाचार्य इस प्रतिज्ञा को स्वीकार करते हैं। घाट में गोहरण क उपलक्ष्य में कारथ राजा विराट की राजधानी पर आक्रमण करते हैं। राजकुमार उत्तर कौरवों ने युद्ध करने क लिये चल दता है। ऐसी स्थिति में अश्वत्थामा में स्थित अजुन की महायत्ता पाकर उत्तर की विजय होती है। पाण्डव समय क साथ प्रकाश में आते हैं। द्रोणाचार्य दुर्योधन को पृक्कृत प्रतिज्ञा का स्मरण दिखते हैं। दुर्योधन उहै आधा राज्य दे दता है। महाभारत की कथा में कोई मर्गति न मिलने में यह घटना अज्ञत कविप्रतिभा की उपन प्रतीत होती है।

**अभिषेक**—इस नाटक में किष्कि घाटाण्ड सुदुरकाण्ड लकाकाण्ड तथा राम क राधाभिषेक पयन्त की कथा वर्णित है। इसी राज्याभिषेक क कारण उक्त नाटक का नाम 'अभिषेक' पड़ा है।

**मध्यमप्याथोय**—इस नाटक में पाण्डुपुत्रों क वनवास के समय घटोक्षक के

हाथों से भीम द्वारा एक ब्राह्मणबालक की सुरक्षा की कथा वर्णित है। व्यायोग शब्द नाटकों का एक भेद है। मध्यम शब्द भीम और उस ब्राह्मण बालक के लिये प्रयुक्त हुआ है, जिसे भीम ने बटोल्कच के क्रूर हाथों से बचाया था। अतएव इसका नाम 'मध्यमव्यायोग' रखा गया है।

अविमारक—इस रूपक में सौवीर राजा के पुत्र विष्णुसेन, जो अविमारक के नाम से प्रख्यात है तथा राजा कुन्तिभोज की लड़की कुरङ्गी के विवाह और प्रणय की घटना का उल्लेख किया गया है। सम्भव है किसी अतीत परम्परागत आख्यायिका को प्रकृत नाटक का रूप दिया गया है, जिसका निर्देश कामसूत्र में पाया जाता है। विष्णुसेन ने भेडरूपधारी 'अवि' नामक दैत्य को मारा था। इसलिये इस नाटक का नाम 'अविमारक' रखा गया है।

द्विर्रचारुदत्त—इस रूपक में ऐश्वर्यहीन पर चरित्रवान् विप्र चारुदत्त और गुणग्राहिणी वाराङ्गना वसन्तसेना की प्रेमलीला वर्णित है।

कर्णभार, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच तथा ऊरुभङ्ग—महाभारत के महत्त्वपूर्ण तत्त्व घटनाचक्रों से उक्त नाटक सम्बन्ध रखते हैं।

भास की कृतियों को विषयानुसार पाच भागों में बाटा जा सकता है—रामायण पर आधारित नाटक, महाभारत पर आधारित नाटक, भागवत-कथाश्रित रूपक, लोकप्रचलित कथा पर आश्रित नाटक और उदयन की कथा से सम्बन्धित नाटक।

### प्रामाणिकता

म० म० श्रीगणपति शास्त्रीजी द्वारा अनुसन्धान किये गये तेरह नाटकों की प्रामाणिकता में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग भासकृत प्रचलित नाटकों को उनकी वास्तविक कृति न मानकर उनके नाटकों का संक्षिप्त रूप मानते हैं। कुछ लोग उपलब्ध नाटकों के कुछ भागों को तो भास की रचना और कुछ अंश को किसी अन्य की कृति बतलाते हैं। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि भास के नाटक अपूर्ण अवस्था में मिले थे; सम्भव है किसी अन्य कवि ने उन्हें पूरा किया हो। कुछ विद्वान् 'स्वप्नवासवदत्तम्' को तो भासकृत मानते हैं, पर शेष नाटकों को, जो भास के नाम पर प्रचलित हैं, उनकी कृति मानने के लिये कदापि सहमत नहीं हैं। परन्तु इन बातों का उचित उत्तर देने के लिये (१)शास्त्रीजी, (२)पूज्यपाद श्री बलदेव जी उपाध्याय तथा (३)श्री कान्तानाथ जी

(१) देखिये—म म गणपति जा शास्त्री कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' आदि नाटकों की भूमिका।

(२) देखिये—सस्कृत साहित्य का इतिहास (उपाध्याय जी कृत)।

(३) देखिये—स्वप्नवासवदत्तम् की भूमिका (श्रीतैलगशास्त्रीजी कृत)।

शैल्य आदि विद्वानों ने अनेक प्रमाण एवं युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। उनका कहना है कि नाटकों के रचनासाधक भाषाविद्यास तथा कुछ विशेषताओं आदि पर दृष्टिगत करने से यह प्रतीत होता है कि इन तरह नाटकों का निर्माता एक ही कवि है। इन विद्वानों ने प्रामाणिकता के पक्ष में जो युक्तियाँ एवं सम्मितियाँ दी हैं उनका सारांश निम्नलिखित है—

(अ) भास के नाम पर प्रख्यात एवं प्रचलित सब नाटक 'नान्द्यन्ते तत् प्रविशति सूत्रधार' से आरम्भ होते हैं। अनन्तर सूत्रधार रङ्गमञ्च पर आता है और मङ्गलगान करता है।

(आ) भास के नाटकों में सबत्र प्रस्तावना के स्थान पर 'स्थापना' का प्रयोग किया गया है परन्तु न तो उनमें कवि का नामोल्लेख है और न नाटक का ही। यह विशेषतायें भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा की प्रसिद्धि होने से पूर्व काल की ओर संकेत करती हैं।

(इ) प्रत्येक ग्रन्थ की समाप्ति में भरतवाक्य के माध्यम से प्रार्थना में 'महीमेकतपत्राङ्गा राजसिंह' प्रचारित न या अन्य किसी तत्सम पद्य का प्रयोग किया गया है। नाटकों का आद्यन्त एकसा है। बहुत से नाटकों के आरम्भ में मुद्रालङ्कार के माध्यम से प्रमुख प्रमुख पात्रों का नामनिर्देश किया गया है।

(ई) भाषा छन्द पद्य भाव कल्पना और घटना आदि प्रायः सब नाटकों में समान हैं। बहुत से अलङ्कार-शास्त्र के रचयिताओं ने भी भास के नाटकों से पद्य उद्धृत करके अपने ग्रन्थोंकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है। वामन, वृष्णी, आचार्य अभिनव गुप्त आदि कवियों ने उनके किसी न किसी श्लोक आदि को उद्धरण की कोटि में रखा है।

(उ) भासकृत नाटकों में प्रयुक्त अनेक अपाणिनीय प्रयोग भी इनकी रचनाओं की प्रामाणिकता एवं प्राचीनता में सहयोग देते हैं। डा० मैक्स लीन्डेनेव आदि का कथन है कि प्रचलित नाटकों में भरतमुनिप्रणीत नाट्यशास्त्र में वर्णित नाटक के नियमों का उल्लंघन किया गया है जैसे—'ऊर्ध्व' में दुर्योधन की मृत्यु मञ्च के ऊपर दिखलाना 'प्रतिमा' में राम के द्वारा बाली का वध रङ्गमञ्च के ऊपर दिखलाना आदि बातें शास्त्रीय परम्परा के विरुद्ध हैं। उक्त प्रथा उस युग की ओर संकेत करती है जब कि भरतमुनि का यह नाट्यशास्त्र साहित्य समाज में पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित एवं विकसित नहीं हो सका था। इस आधार पर यह भी कहना उचित होगा कि उक्त नाटकों का निर्माता एक ही कवि रहा होगा और वह भास के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

## नाट्यकला

भास के नाटकों में मनुष्य जीवन के विविध रूपों का पर्यवेक्षण करने का भरपूर अवसर उपलब्ध होता है। अतएव उनके रूपकों में विविधता एवं सर्वतो-मुखी प्रतिभा की झलक विशेषतः दिखाई पड़ती हैं। दूतवाक्य, मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और ऊरुभङ्ग 'एकाकी' नाटक की श्रेणी में आते हैं, पर प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिभा इत्यादि पूर्ण विकसित नाटक माने जाते हैं। इनके सब नाटक बड़ी सरलता से रङ्गमञ्च पर खेले जाने योग्य बने हैं। अभिनेयता इन रूपकों को सबसे बड़ी विशेषता है। इन नाटकों में न तो वर्णन की प्रचुरता पायी जाती, न अनावश्यक कथावस्तु का विस्तार ही, जो अभिनेताओं की अभिनय-कला की गतिविधि के प्रतिरोधक है। भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न-भिन्न भावों और विषयों के सूक्ष्म वर्णन में भास सिद्धहस्त हैं। वाग्वाहुल्य से मानों उनका स्पर्श ही नहीं है। इनका नाटक सुव्यवस्थित, सुसङ्घटित और सुस्त है। पात्रों के सवाद भी नपे-तुले शब्दों में हैं। पात्र उपयुक्त बातों को तुने हुए शब्दों में कहना अधिक पसन्द करते हैं। वे अनुपयुक्त बकवाद नहीं करते। भास सवादकला के विशेषज्ञ हैं। वे भली-भाँति जानते हैं कि कौन व्यक्ति किस परिस्थिति में क्या कहेगा या कहना चाहेगा। वे मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व को सीधी भाषा में सरलता से व्यक्त कर देते हैं। अतएव भास के नाटक शास्त्र की दृष्टि से सुबोध, अभिनेय और सरल हैं।

## शैली

भास की शैली अपने ढङ्ग की निराली है। भाषा प्रभावोत्पादक और मुहावरदार है। इनकी भाषा में जगह-जगह स्वभावोक्ति का पुट भरा मिलता है। इन्हे लम्बे लम्बे समस्त पदों का प्रयोग पसन्द नहीं है। यद्यपि गद्यकाव्यों और महाकाव्यों में विलिप्त भाषा एवं समासयुक्त पदों की प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है तथापि नाटक के लिये वह सर्वथा अनुपयुक्त है। नाट्यशास्त्र के लिये भाषा की सरलता, सरसता, स्फुटता, प्रसन्नता, गम्भीरता, मधुरता, मनोरञ्जकता आदि अपेक्षित हैं। भास के विचार और भाव उच्च तथा हृदयङ्गम करने योग्य हैं। इनकी भाषा में सरलता है। कथोपकथन और कवित्व की दृष्टि से भी इनके नाटक संस्कृतसाहित्य के किसी भी सर्वसम्मानित कवि और नाटककार से कम नहीं हैं। कालिदास जैसे प्रख्यात महाकवियों में भी, माधुर्य, प्रसाद आदि गुण उपलब्ध होते हैं, पर भास की रचना में ये गुण पूर्णरूपेण विकसित हुए हैं। इनके पद्य और गद्य दोनों प्रशंसनीय हैं। इनकी शैली और भाषा उस युग की ओर निर्देश करती है, जब संस्कृत जनसाधारण की भाषा थी।

भास की घणनकला बड़ी मीठी और अपने बूझ की अनोखी है। जैम नाटक का अन्न भाषा है वैसे ही उक्तिप्रकार भी। भास का उक्तिप्रकार भी विचित्र है, जैम स्वीकृत्ययक आम तथा 'दातम' का प्रयोग 'यदि तथा 'येतु का प्रयोग, पुनाल-प्रवर के लिये सुरमायस्य आदि का प्रयोग। कालिदास, भवभूति आदि कवियों ने इनके प्रार्था की छाया से स्वस्य प्रर्थों की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। भास रचित 'अविमारक' नाटक में वर्णित मध्याह्न में भगवान् भास्कर के प्रवर ताप स तपे हुए संसार को देखिये—

आयुष्या उररितेव भास्करकरैरापीतसारा मही  
यक्षमार्ता इव पादपा प्रमुपितच्छाया दवान्याधयात् ।  
त्रिकोशनयवशादिवोच्छ्रितगुहाग्याप्तानना पयता  
लोकोऽय रविपारुनपहृदयः संयाति मूर्च्छामिव ॥

इस मध्याह्नकालीन घणन की 'मालविकाग्निमित्र' के पत्र-छायासुहसा आदि कालिदास के मध्याह्नवगन से समता कीजिए। अन्तर इतना ही है कि कालिदास राजा के उद्यान में लड़े हैं और भास जगल में।

भास ने अपने स्वप्नवासवदत्तम् में तपोभूमि का घणन निम्नलिखित प्रकार से किया है—

विसम्भ हरिणाश्र-त्यचकिता वेशागतप्रत्यया  
धृवा पुष्पकलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारचिता ।  
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यचेत्रवत्यो दिशो  
निस्तदिग्धमिद तपोवनमय धूमो हि बह्वधाश्रय ॥

भास के द्वारा रचित तपोवन के घणन को पढ़कर 'अभिज्ञानशाकुन्तल में वर्णित कालिदास के तपोवन के आभोग की स्मृति जागृत हो जाती है। स्वेच्छया इतस्तत दिचरण करनेवाले हरिण दोनों को आकर्षित कर रहे हैं।

भवभूतिरचित 'उत्तररामचरित' के दूसरे अङ्क का आश्रेयी सवाद 'स्वप्न वासवदत्तम्' के प्रथम अङ्क के विद्याधरसवाद की प्रतिकृति या छाया कहा जा सकता है। भास बह्निगत् और अन्तर्जगत् के चित्रों को चित्रित करने में सिद्ध हस्त हैं। उदाहरणार्थ स्वप्न नाटक का प्रथमोक्त द्रष्टव्य है।

भास के रूपक अनेक मनोरम चित्रों से चित्रित एवं सुसज्जित हैं। अस्तु इस लघु निबन्ध में महाकवि की बहुमुखी प्रतिभा एवं गुणों को लिपिबद्ध करना माहेश जन के लिये अशक्य है।

## पात्र-चरित्र-चित्रण

भास के पात्र आकारमात्र नहीं, अपितु सजीव प्राणी हैं। उनका चरित्र इतना विशद एवं उत्कृष्ट है कि वे साहित्यसंसार में सदैव अमर रहेंगे।

### चारुदत्त

चारुदत्त प्रस्तुत रूपक का नायक है, जो एक उज्जयिनी के व्यावसायिक ब्राह्मण के रूप में उपस्थापित किया गया है। यह अपनी परोपकारी प्रवृत्ति एवं असाधारण गुणों के कारण सबको प्रभावित करता है। वह जात्या तो ब्राह्मण है पर कर्म से वैश्य है। वह सार्थवाह का पुत्र और स्वयं भी सार्थवाह (ध्यापारियों के काफिले का मुखिया या नेता) है। एतदर्थ दूसरे अङ्क में जब चैती वसन्तसेना से यह जानने के लिए अभिलाषा प्रकट करती है कि 'क्या विद्याविशेष से रमणीय किसी ब्राह्मण को चाहती हो?' तो वह उत्तर देती है 'पूजनीय खलु स जन' अर्थात् नहीं (पृ० ५३)। तथापि वह ब्राह्मणपुत्र चारुदत्त से अपना प्रणय-सूत्र जोड़ती है। एकमात्र कारण यही है कि वह किसी ऐसे विप्र से अनुराग नहीं करती जो जाति तथा कर्म दोनों प्रकार से ब्राह्मण है। उसके हृदय में ऐसे पुरुष की प्रतिमा विराज रही है जो जन्म से ब्राह्मण है पर कर्मणा वैश्य। वह रूपवान् एवं गुणसम्पन्न व्यक्ति है। दूसरे अङ्क में सार्थवाह आर्य चारुदत्त का परिचय देते हुए वसन्तसेना से कहता है 'आकृतिमान् अविभ्रमन् अनुस्सिको ललितः' इत्यादि (पृ० ६१)। वह सगीत विद्या का प्रेमी एवं चतुर पारखी भी है। इसीलिये तीसरे अङ्क के आरम्भ में वह विदूषक से वीणा की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है, वह शरणागत-वत्सल है। वह वसन्तसेना को जो राजश्यालक (शकार) से त्रस्त है सुरक्षा का वचन देता है (पृ० ५८)।

चारुदत्त पहले धनवान् था। पर वह अपनी असीमित उदारता एवं श्रुत (जुआ) की प्रवृत्ति के फलस्वरूप शीघ्र ही धनहीन हो जाता है। वह इतना निर्धन हो जाता है कि वह अपने महल की आवश्यक सफाई भी नहीं करवा पाता। उसके घर की 'देहली पर तृण एवं थव के अङ्कुर तक निकल आये हैं (पृ० १२)। उसे अपनी गरीबी पर पश्चात्ताप होता है। फिर भी अपनी इस दरिद्रमयी परिस्थिति में पार्श्ववर्ती वायुमण्डल का सूक्ष्म निरीक्षक बना रहता है। इस उजाड़ परिस्थिति में उसे मित्रों में अपनी उपेक्षा का कटु अनुभव होता है (१४)। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'पाप कर्म-वत् परैरपि कृत तत्तस्य सम्भाव्यते', 'द्वारिद्र्यं पृष्ठं महापातकम्' और 'सर्व-शून्यं दरिद्रस्य' इत्यादि। लेकिन इतने पर भी उसे सन्तोष इस बात पर है

कि वह हम दीनहीन दत्ता में अपन शैक्षिक सन्तुलन को एता नहीं दिया है—  
'मरुत च न परिभ्रष्ट यद् हरिद्रयु बुद्धमम्' ।

चारुदत्त स्वभावतः गम्भीर तथा उदार है। जब भी उम कोई मरकाय एवं मनोरम मवा की सूचना देता है तो वह उसे पुरस्कार देता है। कण्ठपुर उसका कृतज्ञ है। 'धरोहर' (न्याय) वस्तु की वह एक पवित्र एवं मरत्तणीय द्रव्य समझना है। वमन्तमेना क पास प्रेषित की गई 'मुक्तावली' हम बात की माची है। चारुदत्त अपनी श्रिद्धावस्था में भी मित्रों क श्रुत कथन या अपराधों पर छुल्लाना नहीं अपितु उसको सहन कर लेता है। विदूषक (मैत्रय) अलकार की चारों का उत्तरदायित्व उसी क माथे मन्ता है और अपन यह कह करक अलग हा जाता है कि अछा किया कि अलकार आपको न दिया' (पृ० १४)। परन्तु चारुदत्त उमक ऊपर प्रेषित हाने की अपरा कबल इतना ही कहकर मन्नाप करता है—इन्त हतं मुषणभाष्यम् । चारुदत्त धीर स्वभाव का व्यक्ति है। जब विदूषक उस सूचित करता है कि शकार वमन्तमेना को घर म निकालन की धमकी दे गया है तो वह उस कबल उपचा भाव से मुन एता है। हम प्रकार अनेकानेक वैयक्तिक गुणों क माथ-माय रवी-दवनाओं में निष्ठा की भी मात्रा पर्याप्त रूप म पाते हैं। जब विदूषक मारु का आदि दवताओं की अर्चना में अथक्षाप्रभृत् करता है तो वह कहता है—मूर ! यथाविभवनाष्यताम् । भक्त्या मुष्यन्ति दैवतानि' इत्यादि (पृ० ३३)। यह माग्यवादी है। प्रथम अंक में विदूषक क साथ बातचीत करते हुए वह कहता है कि घन माग्य क अनुमार हाते रहते हैं (पृ १५)।

चारुदत्त विलासप्रिय व्यक्ति है। वह 'म्राक्षणी' जैसी पत्नी को पाकर भी रूप ध्व यौवन म मरुपन्न वमन्तसेना को हृदय से प्यार करता है। परन्तु यह स्मरणीय है कि वह वमन्तसेना पर मोहित होने पर भी अपने गार्हस्थ्य जीवन ध्व धर्म को भुली नहीं देता। उसे म्राक्षणी जैसी पत्नी तथा विदूषक जैम मित्र का विनाप गौरव प्राप्त है। वह स्वयं इसकी प्रशंसा करता है—किञ्चाह हरिद्र, यस्य मम-विभवानु वशा मायां -इत्यादि (पृ ३०)। चारुदत्त में एक अनुर नागरिक का गुण है। उसे मालूम है कि अपनी प्रेयसी को किस मांति अनुकूल बनाया जा सकता है। वह ज्ञात होने पर कि जिसे वह रक्षिका समझ रहा था वह वमन्तमेना है वह उससे कहता है—'यद्वममहमपि तावद् विज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि (पृ० ४६)।

वमन्तसेना भी उसको हृदय से चाहती थी इसका स्वयं उसे पता है। विदूषक वमन्तमेना के ममत्त्व ही उसे कहता है—'मो चारुदत्त ! वमन्त मेना श्चिवर्यं था भवता कामदवानुयानप्रभृति नयनमाश्रमस्तुता सन्निहित

मनोभवेन हृद्यमेनोदुहते । तत्पश्यन्निमाम् ( प्र० ४५ ) वसन्तसेना उक्त बातका कोई पस्युत्तर नहीं देती बल्कि चारुदत्त की भांति वह भी नहीं कहती है कि—'अदत्तभूमिपवेशपश्र्वणेनापरास्तात्मानं शीर्षेण प्रसादयामि' ( प्र० ४६ ) । इस प्रकार हम देखते हैं कि चारुदत्त विलासमय जीवन में भी नैतिक नियमों का उचित पक्ष उपस्थापित करता है ।

चारुदत्त के चरित्रों का मूल्यांकन करते हुए हमें यही कहना पड़ता है कि उसका चरित्र अनेकानेक वैयक्तिक एवं नैतिक गुणों से परिपूर्ण है । इसमें दोष है तो नहीं है कि वह एक सामान्य स्त्री ( गणिका ) वसन्तसेना से अपना रामाभक्त सम्बन्ध स्थिर करता है और दूसरा यह है कि उससे प्रत्यूहण ( जुआ ) की प्रवृत्ति है ।

### वसन्तसेना

वसन्तसेना पस्युत वृत्ति की नायिका के रूप में उपस्थापित की गई है । यह लज्जभिनी की एक गणिका है । यद्यपि यह एक सामान्य नायिका है, जिसने अपने आपको चारुदत्त के साथ रागाभक्त सूत्र में जोड़ दिया है । फिर भी उसका स्तर गिरा हुआ नहीं है । वह भी एक अभिजात कुल की महिला होने का दम भरती है 'एष मे अभिनिवेशः अभिजनेन तोहयते' ( प्र० २० ) । इस प्रकार चारुदत्त की भांति वसन्तसेना में भी आवश्यक गुण विद्यमान हैं । वह इस बात से अच्युत तरह परिचित है कि अपने ऐसी के पशव-सम्पन्न व्यवहार का किस तरह पालन करना चाहिए । पदों अङ्ग में जन्म चारुदत्त उससे उसके साथ भ्रमवश परिचारिका की तरह व्यवहार करने के अपराध भी समाभ्यापना करता है तो वह भी अपने अपराध की दण्डा की मांग करते हुए बहती है—

'अदत्तभूमिपवेशपश्र्वणेनापरास्तात्मानं शीर्षेण प्रसादयामि' ( प्र० ४६ ) ।

वसन्तसेना चारुदत्त के लज्जा गुणों से मुग्ध होकर उसे हृद्य से खाती है । इस बात की प्रति पद्य अङ्ग में शकार के कथन से ही आती है ( प्र० २९ ) । उसमें सादस की वृत्ति तम दिखाई पड़ती है जब वह अपने आपको शकार से बचाने का प्रयत्न करती है 'अत एवममेव आत्मा रचितम्भः' चारुदत्त की भांति वसन्तसेना भी शरणागतपश्र्वणा है । जब संग्रहण उसके भर शरण लेता है तो वह शरणागत के माते स्थान तो देती ही है साथ ही साथ संग्राहक के चारुदत्त का परिचय देने पर वह उसका विशेष संहार करती है । चारुदत्त की दरिद्रता से वह अच्युत तरह परिचित है । फिर भी वह उसे खाती है । अन्त-वेदमात्रों की भांति उसका प्रेम सर्वसूत्रक एवं कृत्रिम नहीं है । वह तो उसके गुणों से आकर्षित है । उसे यह भी भांति विदित है कि अति दरिद्र पुरुष पर आसक्त गणिका की पतिव्रता लोक में स्तूयित रहती है । उसको अभिलाषा चारुदत्त से



मिलने का है। द्वितीय अष्ट में मदनिका वसन्तसेना स कहती है कि जब चारुदत्त क प्रति गुहारा बहुत बड़ा सम्मान है ता स्वयं क्यों नहीं चली जाती? इसपर यह तर्कयुक्त उत्तर देती है कि मैं तो जाऊँगी ही पर देमा करने पर दरिद्रता के कारण अपन आपको प्रत्युपकार करने में असमर्थ पाऊँर कहीं यह फिर भरे लिये दुःख न बन जाय। पतद्वय म विलम्ब कर रही है। उक्त बातों से यह निश्चि होता है कि यह उससे विरथायी प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करना चाहती है।

चारुदत्त के समान उसमें भी ललित कला की प्रवृत्ति निहित है। यही कारण है कि विदूषक उसकी इस कला पर मुग्ध हो जाता है 'अहो गणिका घाटस्य सश्रीकता इत्यादि। वसन्तसेना में कृपणता का रश्ममात्र भी स्थान नहीं है। वह स्वभाषत परोपकारी प्रवृत्ति की महिला है। उमकी उदारता सवाहक क सरक्षण में दृष्टिगोचर होती है। वह संवाहक को विजयी हुआदियों ने मुक्ति पाने के लिये आशुतोष द्रव्य प्रदान करती है। वह भी यह कह करक कि भाय चारुदत्त ही व रह है ऐसा समझें। वह यह कभी नहीं चाहती कि लोग उसका (परोपकारी प्रवृत्ति क उपलक्ष्य में) गुणानुवाद करें। वह उपकृत न्यक्ति स उपकार का बदला भी नहीं चाहती। सवाहक जब उमकी उदारता स मुग्ध होकर यह कहता है कि मेरी यह मालिनी की कला आपके परिजन में उपयुक्त ही जाय तो मैं आपका बड़ा ही आभार मानूँगा। इस पर वसन्तसेना उत्तर देती है—निसक निमित्त तुमने इस कला की शिक्षा पाई है इसस उसी की सेवा करनी चाहिये। यह अपनी दासी क साथ अच्छा व्यवहार करती है और जब उसे ज्ञात होता है कि सज्जलक यास्तव में मदनिका से प्रेमसूत्र जोड़ता है तो वह उसे गुलामी से मुक्त ही नहीं करती वरिक्त अपने आभूषणों से अलङ्कृत करके परिणय भी करा देती है। यह इसके उदारता की पराकाष्ठा है। चारुदत्त के प्रति सम्मान अदा करने के लिये हा विदूषक के द्वारा भेजी हुई मुक्तावली हार को सहर्ष ग्रहण कर लेती है। वह एक गम्भीर प्रकृति का नायिका है और यह सदा प्रयत्न करती है कि समाज में उपहासास्पद न हा सक सन्निजनेनापहसनीयत्वम् आत्मन परिहरामि।

चारुदत्त क प्रति उसका प्रेम पवित्र है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वह चारुदत्त के अनुरूप अपना कतघ्न्य प्रदर्शित करती है।

सज्जलक ५२६ क० २ क० २१ मिन ० ००

सज्जलक मदनिका का प्रेमी है। यह चौयकला में परम प्रवीण है। यह धोरी करने के लिये उपयोगी सभी सामग्रियों से सज्जपत्र कर चारुदत्त के घर धोरी करने जाता है। यह उज्जयिनी का नागरिक नहीं है। सम्भवत कही बाहर से आकर उज्जयिनी में रहने लगा हो। यह मदनिका के प्रेम में इनना पागल हो

घास करने को कहती है। मदनिका समय के अनुसार काय करने की भी चमत्ता रखती है। वह सज्जलक से कहती है कि आय चारुदत्त की ओर से वसन्तसेना को अलंकार देवो। ऐसा करने से तुम यथ जाओगे आय चारुदत्त भी खिन नहीं होंगे और मेरे पक्ष में भी हित होगा। मदनिका गौतमिका के जीवन की अपेक्षा एक आदर्श गृहिणी के जीवन को धेयस्वर समझती है। इसीलिये सज्जलक के साथ वसन्तसेना के द्वारा सम्पादित वैवाहिक जीवन के प्रति अर्चि व्यक्त नहीं करती।

### विदूषक

चारुदत्त के विदूषक का नाम मैत्रेय है। वह जन्मना ब्राह्मण है। परन्तु वह चारुदत्त का व्यक्तिगत साथी एवं प्रनिष्ठ मित्र तथा प्रधान सहायक के रूप में उपस्थित होता है। जब चारुदत्त एक श्रीसम्पन्न व्यक्ति था उस समय वह उसके घर खूब खाता पीता था और आनन्दमय जीवन व्यतीत करता था। पर तब से चारुदत्त अपनी उदार प्रवृत्ति के कारण वरिद्धमय जीवन व्यतीत करने लगा था तब से वह पत्नियों की भाँति ऊपर-ऊपर स्तम्भीकर एकमात्र रहने के लिये उसके घर जाता है (पृ ११)। वह व्यवहार से कभी नहीं रूताना चाहता कि किसी तरह से चारुदत्त को मानसिक कष्ट पहुँचे। अतएव वह रदनिका के अपमान का संदेश उसे अवगत नहीं कराता।

विदूषक कष्टर धार्मिक नहीं है। उसकी देवी देवताओं के प्रति श्रद्धा नहीं है (पृ० ३४)। वह भीरु प्रकृति का है। यही कारण है कि यह अंधरे में चतुष्पथ पर घलि अपण करने जाने में असमर्थता दिखलाता है। जब रदनिका साथ में भेजी जाती है तब कहीं स्वयं भी जाने को तैयार होता है (पृ ३३)। यह मूख्य भी है। जब वह अलङ्कारों के बदले मुक्तावली देने जाता है तब वसन्तसेना उसे केवल मौखिक आवर करके पिदा करने लगती है इस पर वह स्वयं कहता है— कोऽप्युपचारोऽपि नैतया भणितः (पृ० ११९)। वह ठिठोलिया भी है। कभी-कभी ऐसी बातें करता है कि हँसी आ जाती है। प्रथम अङ्क में जब वसन्तसेना और चारुदत्त स्व-स्व अपराधों के निमित्त एक दूसरे से क्षमा याचना करते हैं तो उस समय वह कहता है भो विवहन्ताविव शकटिकां दुर्धिनीतवलीवर्दावन्योऽयं सकलेशयत इयावि (पृ० ४०)। उसे गणिका-प्रसंग अच्छा नहीं लगता है। वह भली भाँति जानता है कि वेरयाएँ कुटिल स्वभाव की होती हैं। समस्त वसन्तसेना के प्रति ऐसी ही कुछ धारणा रखता हो। इसलिये जब चारुदत्त मुक्तावली को वसन्तसेना के पास ले जाने को कहता है तब वह आश्रय के साथ कहता है— अहो! अक्षयस्य सुवर्णभाण्डस्य कृते शतसहस्रमूल्या मुक्तावली निर्यातम्मा' (पृ० १०२)।

के सुप्त में सुधी और दुःख में दुःखी रहना पसन्द करती है। इतना ही नहीं वहिक चारुदत्त के सवयिष प्रसन्नता और सुप्त सुविधा का सवया ध्यान रगती है। यही कारण है कि वह अपना एक विविष्ट भामूपण (मुक्तावली) वसन्तसेना को देने के लिय चारुदत्त के पास भेजती है। ऐसा उसे तब करना पड़ता है जब चारुदत्त की मुरछा में पड़ हुए वसन्तसेना के भामूपण सज्जलक द्वारा चुरा लिय जाते हैं। वह विचारती है कि जनता कहगी कि दरिद्र चारुदत्तने अलंकार हड़पकर चोरी का चहाना कर लिया है। ऐसी परिस्थिति में इसे चारुदत्त के वैभव और अस्मि-वसमय देह की अपेक्षा सुयश की बहुत बची भूख है। मुक्तावली का प्रदान हमका उदाहरण है। पर इसका श्रेय अपने उपर लेना नहीं चाहती। इसे यह विदित है कि ऐसा कहकर मुक्तावली भेजने से चारुदत्त को हार्दिक कष्ट होगा और यह शायद लेने से अस्वीकार कर दे। इर्मलिण पष्ठी के दान के चहाने विनूपक के हाथ भेजती है। चारुदत्त की भाति यह भी धार्मिक विचार की महिला है। पष्ठी का दान हमका प्रसन्न प्रमाण है। प्राज्ञगी यह अच्छी तरह जानती है कि चारुदत्त वसन्तसेना के प्रति दुरागात्मक और असामाजिक सम्बन्ध रखता है। फिर भी उसमें इतनी धैर्यशीलता है कि हम दुर्भाव को व्यक्त होने नहीं देती। इस तरह हम देखते हैं कि यह उत्तम श्रेणी की भारतीय गृहिणी एवं धीरा नायिका का आवर्ण स्थापित करती है।

### शफार

शफार प्रस्तुत रूपक का प्रतिनायक है। यह राजा का साला है। सम्भवत हमकी वहन राजा की परिणीता या रसली हो। इसी आधार पर इसे राजा का साला (राजसवाल) कहते हैं। यह स्वयं भी मनु पुत्र एवं 'राजसवाल' शब्द से सूचित करता है। यह महान् भूख है। इसे वातचीत करने का भी बरा नहीं है। यह पौराणिक कथाओं को सुन चुका है। पर इसका ज्ञान असतुलित है। यह वसन्तसेना को घमकी बूते हुए कहता है अहं त्वां गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासन सीतामिवाहरामि शृणोमि गन्ध श्रवणाभ्याम्' 'अधकारपूरिताभ्याम् नासापुटार्थ्यां सुष्ठु न पश्यामि'। यह वसन्तसेना के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। पर वह उसे हेय एवं अपेक्षा की दृष्टि से देखती थी। यह बहुप्रयोग के द्वारा उसे आत्मसात् करना चाहता है। पर इसे असफलता ही मिलती है। यह हठधर्मी है पर स्थिर विचार का व्यक्ति नहीं है। प्रथम अङ्क में विनूपक (मैत्रेय) से चारुदत्त के पास वसन्तसेना को घर से निकाल देने का मरणात्मिक सन्देश तो भेजवाता है। पर अचरश अन्त तक इसका निर्वाह नहीं करता। विट के चले जाने पर स्वयं भी वहाँ से किसक जाता है। यह अपने सहयोगियों में न विश्वास ही करता है न प्रेम। विट के साथ भी सभवत

यही बात हो । तभी तो रदनिका को आती हुई देखकर यह स्वयं कहता है 'अनया वराक वञ्चयामि' ( पृ० ३५ ) । विट आर्य चारुदत्त के व्यक्तित्व एवं गुण से प्रभावित है और उसकी दानशीलता एवं त्याग की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है ( पृ० ४० ) । पर शकार चारुदत्त के गुणों से ड़ाह करते हुए प्रतिद्वन्द्वी का पाठ अदा करता है ।

उक्त विशेषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भास कथाविन्यास तथा पात्रों के व्यक्तित्व एवं वास्तविक स्वरूपोद्घाटन में अद्वितीय प्रतिभावान् रूपककार है । इसमें विवाद का लेशमात्र भी स्थान नहीं है ।

## कथास्रोत

प्रस्तुत इतिवृत्त 'वासवदत्ता' के सनातन ही सभ्य है कि किसी ऐतिहासिक या परम्परागत एवं तात्कालिक प्रचलित पहानी से लिया गया हो। यही कहानी इसी रूप में गुणाढय की 'बृहत्कथा' में भी उपलब्ध होती है। 'नृप' ने अपने 'मृच्छकटिक' के द्वारा भी इस पहानी के बदलाव में कुछ अधिक रक्तमास भरने का प्रयास किया है। भास द्वारा रचित 'चारदत्त' सम्भवतः अपूर्ण है अपेक्षाकृत 'नृप' के 'मृच्छकटिक' के। 'मृच्छकटिक' वा इतिवृत्त अपने अर्थ में पूर्ण है क्योंकि उसमें सामाजिक राजनीति का पूरा पक्ष उपस्थापित किया गया है। यह कथास्रोत की निश्चित निम्नतम सीमा की बात हुई। इसे उपरिष्ठ सीमा पर भी लाया जा सकता है। प्रयत्न थी कान्तानाय की शास्त्री 'तैलंग का कहना है कि 'मृच्छकटिक' के कर्ता 'सोमदेव और दण्डी दोनों से पुराने हैं। हों गुणाढय की 'बृहत्कथा' को 'मृच्छकटिक' का उपजीव्य कहा जाय तो समझ हो सकता है। भूतभाषा में लिखा हुआ यह अतिप्राचीन ग्रन्थ पद्यासरित् सागर का आधार है। अतः उसमें भी ऐसी पद्याएँ रही होंगी। परन्तु हम तो भास के दरिद्र 'चारदत्त' को 'मृच्छकटिक' का आधार मानना उचित समझते हैं।

महाकवि भास के रूपकों के आलोक में आ जाने के कारण 'मृच्छकटिक' के मूलक विषय में विद्वानों के विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है। ऐसी स्थिति में भी धर्म विद्वांसमाज भास के 'चारदत्त' को ही 'मृच्छकटिक' का आधार स्वीकार करते हैं। भास का प्रस्तुत रूप 'चार' अर्थात् विभाजित है। चतुर्थ अङ्क के अन्त में वसन्तसेना अपनी प्रियदासी मदनिका को अलङ्कारों से सुसज्जित करके सज्जलक (मृच्छकटिक वा शर्विकक) के साथ विदाई कर देती है। तदनन्तर वह अपनी चेटी (चतुरिका) को बुलाकर कहती है—'हअ ! पश्य जाग्रथा मया स्वप्नो दृष्ट एवम् । इस पर चेटी प्रसन्न मुद्रा में उत्तर देती है— प्रिय मे अमृताई नाटक सवृत्तम् । तदुपरान्त वसन्तसेना अलङ्कारों से अलङ्कृत होकर भास 'चारदत्त' के घर अभिसरण का प्रस्ताव रखती है। चेटी उसका अनुमोदन करती हुई कहती है कि— अज्जुके तथा । एतत् पुनरभिसारिका सहायमूर्तं बुद्धिन्सुममितम् । इस पर वसन्तसेना हँसी की मुद्रा में ढपट

१ बिश्वर विवचन के लिए प्रेरित्ये—श्रीका तानाय शस्त्री वैश्व मन्वादिन मृच्छकटिक की समाज पृ ११ ।

कर उससे कहती है—‘हताशे । मा एतलु वर्धय । तव चेटी कहती है—‘एवे-  
त्वञ्जुका’ । इसी स्थल पर रूपक का पर्यवसान हो जाता है ।

भास के ‘चारुदत्त’ की हस्तलिखित प्रतियों में से एक में चतुर्थ अङ्क के अन्त में ‘अवसित चारुदत्तम्’ ऐसा उल्लेख मिलता है । इस धरातल पर कुछ आलोचक वर्ग ‘चारुदत्त’ को वहाँ पूर्ण मानता है जहाँ वह उपरत होता है । कुछ विद्वान् इस रूपक को अपूर्ण बतलाते हैं । उनका कथन है कि इसमें कम से कम एक अङ्क ( अर्थात् पञ्चम अङ्क जिसमें नायिका का मिलन रूप प्रयान् संभावित है ) अवश्यमेव होना चाहिए था । अस्तु, लेखक की वारणा है कि ‘चारुदत्त’ ‘मृच्छकटिक’ की कथा का उद्गम स्थल है । उसकी कथा में शूद्रक ने अपनी कल्पना प्रसूत शंली का परिचय दिया है अथवा ‘बृहत्कथा’ के आधार पर राज्यत्रिप्लव वाले अंश को जोड़ दिया है । इस परिस्थिति में भी ‘चारुदत्त’ की कथा में उदासीनता की अपेक्षा एक नये रंग का समावेश हो गया है ।

## कथासार

### प्रथम अंक

'नादी के बाद स्थापना आरम्भ होती है। सूत्रधार प्रातः काल घर से बाहर निकलता है पर भूल के कारण अधिक देर तक ठहर नहीं पाता। यह लौटकर अपने घर में ( भोजन समय ही ) विशेष प्रबंध का पयवेक्षण कर स्वयं सन्देह में पड़ जाता है। पृष्ठ साधु करने पर नदी के द्वारा विदित होता है कि 'अभिरूपपति नामक उपवास ( व्रत ) के लिये यह प्रयत्न क्रिया जा रहा है। इसपर वह जानकर कि चूर्णगोष्ठक के द्वारा उपवास का विधान नियत किया गया है वह उसे धन्यवाद देता है। नदी उसे किसी ब्राह्मण को निमन्त्रित करने के लिये अभिलाषा व्यक्त करती है। वह ब्राह्मण की लोज में चला जाता है। अचानक उसे मैत्रेय ( विदूषक ) दिखाई देता है। यह उसे निमन्त्रित करता है। मैत्रेय ( भोजन के निमित्त ) आमन्त्रण को अस्वीकार कर देता है। सूत्रधार उत्तम सुपरिपक्व भोजन और दक्षिणा की छालच देता है। पर मैत्रेय पुनः अस्वीकार कर देता है। इसपर सूत्रधार फिर से अनुरोध करते हुए ही गुड़ आदि की चर्चा चलाकर चला जाता है। यहीं पर स्थापना समाप्त हो जाती है।

प्रथम अंक के प्रथम दृश्य के आरम्भ में मैत्रेय मञ्च पर आता है। वह सूत्रधार की कही हुई बातों की पुनरावृत्ति करते हुए कहता है कि किसी आय को निमन्त्रित करो। मैं व्यस्त हूँ। इसी प्रसङ्ग में वह चारुदत्त के वैभव काल के सुखमय जीवन और दरिद्रता के कारण वर्तमान दुःखमय स्थिति का भी वर्णन एवं विरलेप करते जाता है। फिर भी उसे सन्तोष है और इसी सन्तुष्टि के कारण पछी तिथि पर देवकाय को सम्पादन करने वाले आय चारुदत्त के निमित्त पुण्य और परिधेय ( पहनने योग्य ) वस्त्र को लेकर चारुदत्त के समीप चला जाता है। तब तक उसे पूजा से लौटते हुए आय चारुदत्त दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रथम अंक के द्वितीय दृश्य में बलि लिए हुए नायक ( चारुदत्त ) विदूषक वेदी ( रत्निका ) का प्रवेश होता है। चारुदत्त अपनी दरिद्रता पर अपार शोभ प्रकट करता है। विदूषक उन्हें सान्त्वना देता है।

प्रथम अंक के तृतीय दृश्य में विट और शकार से पीछा की गई सुभ्रान्त-प्रथम प्याकुल गणिका ( वसन्तसेना ) का प्रवेश दिखाया गया है। शकार के कथन से वसन्तसेना का प्रवेश दिखाया गया है। शकार के कथन से वसन्तसेना को विदित हो जाता है कि समीप में ही आर्य चारुदत्त का निवास-स्थान है। इसमें वह अपना सौभाग्य तथा आभरण की अनुभूति करती है। वसन्तसेना अंधेरे में

अपना निगाह बचाकर खसक जाती है। वह चारुदत्त के घर के द्वार के समीप जाकर खड़ी होती है। चारुदत्त विदूषक को मानदेवियों को बलि अर्पण करने के भिन्न चतुष्पथ (चौराहे) पर जाने को वाध्य करता है। विदूषक एकाकी चौराहे पर जाने में भयभीत होता है। पर रदनिका के साथ जाने पर वह तैयार हो जाता है। विदूषक रदनिका को द्वार (दरवाजा) खोलने को कहता है। रदनिका दरवाजा खोलती है। बाहर खड़ी वसन्तसेना आचल की छोर से हवा मारकर दीपक को बुझा देती है। विदूषक रदनिका को चतुष्पथ पर चलने के लिये कहकर स्वयं फिर से दीपक जलाने अन्दर चला जाता है। इसी बीच में वसन्तसेना भी घर में प्रवेश कर जाती है। बाहर बिट शकार को उत्तेजित करता है और वह रदनिका को वसन्तसेना समझकर ~~कह~~ पकड़ लेता है। इतने में विदूषक दीपक लेकर बाहर आता है और शकार तथा बिट द्वारा प्रताडित होती हुई रदनिका को बचाता है। बिट विदूषक से अपने किए अनुचित व्यवहार की क्षमा याचना करता है और आर्थ चारुदत्त के व्यक्तिव का भय मानकर चला जाता है। पर शकार वसन्तसेना को वापस मागता है और इस विषय पर विदूषक से कुछ देर तक वाद-विवाद करता है। इसी प्रसंग में वसन्तसेना को वापस न करने पर मरणान्तिक वैर-भाव की आशङ्का बंकर चला जाता है। देवकार्य की समाप्ति की सूचना देने के लिये विदूषक तथा रदनिका चल देते हैं।

प्रथम अङ्क में चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त वसन्तसेना को रदनिका समझकर देवकार्य के विषय में पूछता है। वह अपना उत्तरीय (आवारक) देता है और उसे भीतर ले जाने को कहता है। वसन्तसेना मौन रहती है। इस पर चारुदत्त कहता है 'रदनिके, क्यों विलम्ब कर रही हो'। इतने में विदूषक और रदनिका अन्दर जाते हैं। विदूषक शकार का सन्देश देता है। वसन्तसेना पहचानी जाती है। वह चारुदत्त के पास अपने आभूषण धरोहर (न्यास) रखकर विदूषक की सुरक्षा-पूर्ण देख-रेख में अपने घर चली जाती है।

### द्वितीय अङ्क

द्वितीय अङ्क के प्रथम दृश्य में गणिका और चेट्टी (मदनिका) मञ्च पर आती हैं। वसन्तसेना अपनी दासी के समक्ष चारुदत्त के प्रति अपना स्नेह व्यक्त करती है। मदनिका चारुदत्त की दरिद्रता की ओर उसका ध्यान आकषिप्त करती है। परन्तु उससे उसका स्नेह घटता नहीं।

द्वितीय अङ्क के द्वितीय दृश्य में सचाहक जो स्वयं जुआड़ी भी था वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है। वह विजयी जुआड़ियों के भय से अपनी सुरक्षा एवं शरण की याचना करता है। यह जानकर कि वह चारुदत्त का पुराना



शून्य है वसन्तसेना उतरती कपल रक्षा ही नहीं करती, अपितु वह उसे घटी द्वारा उचित द्रव्य देकर उसका श्रम सुका देती है। इस प्रकार वसन्तसेना क वास्तव्य-रूप व्यवहार से प्रभावित हो जाता है और अपने दैनिक जीवन क प्रति विरक्ति क कारण 'प्रव्रज्या' ( सयास ) ग्रहण करने की अभिलाषा उत्पन्न करके चला जाता है।

द्वितीय अङ्क क तृतीय दृश्य में चेट ( कण्ठ ) प्रवेश करता है। वह अपने शरीरसाधन काय की प्रशंसा में विशेषरूप से मतवाले हाथी क शयान से मवाहन भिक्षु ( सयासी ) की रक्षा और आय चारुदत्त के द्वारा उक्त काय क उपलक्ष्य में मिले प्राधारक ( उत्तराय ) का वृत्तान्त सुनाता है। वह धरना वसन्तसेना तथा घटी ( मदनिका ) दोनों क मानस मन्दिर में एक विचित्र कौतूहल पैदा करती है। इसके बाद, वसन्तसेना चारुदत्त की वरगन की राखसा य चर का उल्लासित करती है। पतव्य दोनों ( वसन्तसेना और मदनिका ) घट क साथ चारुदत्त को देखने के लिये महल की छत की ओर चढ़ती हैं।

### तृतीय अङ्क

तृतीय अङ्क क प्रथम दृश्य में चारुदत्त और विदूषक मञ्च पर आते हैं। चारुदत्त विदूषक से क्षीणा की प्रशंसा करता है। परन्तु विदूषक को उसमें विशेष अभिरुचि नहीं है। इसके बाद चारुदत्त तथा विदूषक घट ( वचमानन ) को पुकारते हैं। चेट दरवाजा खोलता है। भीतर जाकर दोनों पैर धोकर स्नान की तयारी करते हैं। अष्टमी तिथि को सुवर्णभाण्ड की शुरुवात का भार विदूषक अपने ऊपर लिया था। एतन्मय घटी विदूषक को सुवर्णभाण्ड देना चाहती है। विदूषक तो पहले टालमटोल करता है पर चारुदत्त की आज्ञा से उसे ले लाता है। चारुदत्त सो जाता है। विदूषक भी सुवर्णभाण्ड हाथ में लिए हुए सो जाता है।

तृतीय अङ्क के द्वितीय दृश्य में सज्जलक प्रवेश करता है। वह सुरङ्ग बनाकर चारुदत्त के घर में घुस जाता है। विदूषक निद्रा में चारुदत्त को पुकारकर कहता है कि मुझे नींद नहीं आ रही है। चाई आंस करके रही है। ऐसा लगता है चार खेंच लगा रहा हो। यदि धन की यही हालत है तो मैं दारिद्र्यभय जीवन को ही पसंद करूंगा। इस पर चारुदत्त डाढ़ देता है। तदुपरान्त सज्जलक क द्वारा क्षीणक सुसा दिया जाता है। ऐसी दशा में विदूषक कहता है मैं हर लिया गया। वह चोरी जाने क भय से चारुदत्त को पुकारकर भ्रष्टकार की पंटी देना चाहता है न लेने पर महाभाष का भय दिखाता है। सज्जलक उसे ले लेता है। इसके बाद मपथ्य म हुण नगाड़े के शब्द से भयभीत होकर भाग जाता है।

तृतीय अङ्क के तृतीय दृश्य में चेटी ( रदनिका ) प्रवेश करती है । वह विदूषक को इस बात से अवगत कराती है कि सेंध बनाकर चोर घुस गया । बाद में दोनों चारुदत्त के पास जाकर चोर के घुसने की बात बताने देते हैं । यह सुनकर चारुदत्त आश्चर्यित होता है । विदूषक उससे कहता है कि अच्छा हुआ कि मैंने सुवर्णभाण्ड आपको दे दिया । यह सुनकर चारुदत्त पूछता है कि क्या आपने दे दिया ? कब दिया था ? विदूषक उत्तर देता है आधीरात को । इसपर चारुदत्त कहता है खेद की बात है कि सुवर्णभाण्ड चुरा लिया गया । उसे इस बात की चिन्ता भी होती है कि लोग चोरी की बातपर विश्वास न करके दरिद्रता के कारण उलटे मुझे ही बदनाम करेंगे । इसी बीच में चारुदत्त की पत्नी ब्राह्मणी प्रवेश करती है । चेटी ब्राह्मणी को अलंकार की चोरी की बात बताने देती है । इस वृत्तान्त को सुनकर ब्राह्मणी चकित होती है । वह अपने पतिदेव को लोकापवाद से बचाने के लिये अपनी सतसहस्र मूल्यवाली मुक्तावली विदूषक के हाथ भेजती है । चारुदत्त सुवर्णभाण्ड के बदले मुक्तावली देने के लिए विदूषक को वसन्तसेना के घर भेजता है ।

#### चतुर्थ अंक

चतुर्थ अङ्क के प्रथम दृश्य में वसन्तसेना और मदनिका चित्रफलक हाथ में लिए हुए प्रवेश करती हैं । वसन्तसेना चित्रगत प्रतिमा में आर्य चारुदत्त की प्रतिकृति का आरोप करती हुई मदनिका से कुछ क्षण तर्कपूर्ण बात करती है । इसी बीच में एक दूसरी चेटी आकर वसन्तसेना की माता का आदेश सुनाती है । वह कहती है कि राजश्याल संस्थान ( शंकर ) की गादी ( प्रवहण ) दरवाजे पर लगी है । माता आज्ञा देती है कि तुम अलंकृत होकर जाओ । इस पर वसन्तसेना रक्ष हो जाती है । वह जाने से अस्वीकार कर देती है ।

चतुर्थ अङ्क के द्वितीय दृश्य में सज्जलक वसन्तसेना के घर में प्रवेश करता है । मदनिका भी गुप्त रूप से उससे प्रेम करती है । इसी प्रेम में पागल होकर सज्जलक अपनी प्रियसी मदनिका को वसन्तसेना की गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए चारुदत्त के घर से वसन्तसेना के अलङ्कारों को चुराकर लाया है । तदनन्तर वह इन आभूषणों के साथ मदनिका से मिलता है और उन्हें भेंट के रूप में उसे प्रदान करता है । मदनिका आभूषणों को पहचान लेती है । वह पूछती है कि इसे तुम कहां से लाए हो ? सज्जलक उसे चारुदत्त के घर चोरी की बात बतला देता है । रदनिका और सज्जलक के बीच हो रहे बातचीत को वसन्तसेना भी छिपकर सुनने लगती है । वह उसे चारुदत्त की ओर से वसन्तसेना के पास जाकर अलङ्कार समर्पण करने का उचित परामर्श देती है । सज्जलक उसको बात मान लेता है ।

चनुय भट्ट के नृनाय हरष में एक धरी वसन्तमेना को चारदत्त के घर से एक ब्राह्मण के आगमन की सूचना देती है। वसन्तमेना उमे शीघ्र भद्र खाने का आदेश देती है। घटी विदूषक को लेकर भद्र जाती है। विदूषक वसन्तमेना से कहता है कि चारदत्त तुम्हारे भलद्वार को नुप में डार गया है। इमलिष उमके धद् यह मुन्नावली ग्रहण करें। यह कहकर वसन्तमेना को मुन्नावली दे देता है। वसन्तमेना मुन्नावली लेकर विदूषक को विदा कर देती है।

तदुपरान्त मदनिका वसन्तमेना को सूचिन करती है कि आप चारदत्त के यहां से कोई व्यक्ति आया हुआ है जो आप से मिलना चाहता है। वसन्तमेना उमे भद्र जान की धाना देती है।

चनुय भट्ट के चनुय हरष में मदनिका सज्जलक के साथ प्रवेश करती है। सज्जलक वसन्तमेना से कहता है कि मुझे आप चारदत्त से भेगा है और यह मन्ना कहलवाया है कि जो भलद्वार आपन धरोहर के रूप में रखा था उसकी रक्षा करना कठिन काम है क्योंकि घर की मन्दी आदि नहीं हो पा रही है और कुटुम्ब के लोग भी पास नहीं हैं। ऐसी हालत में आप इसे रख लें। इस पर वसन्तमेना उम पुन लौटा दन की बात कहती है। सज्जलक जान से इकार कर देता है। याद में वसन्तमेना मदनिका को अपने भलद्वारों से भूषित करके परिणीता नायिका के रूप में अपनी गाड़ी में बैठाकर सज्जलक के साथ विदा कर वसन्तमेना चारदत्त के द्वारा भजी हुई मुन्नावली पहनकर उमके घर अभिसरण करने का प्रयत्न हाती है। ऐसी परिस्थिति में आकाश में बुर्जिन ( काले घादल ) उमद पचते हैं।

## पात्र-परिचय

### पुरुष पात्र

नायक—दरिद्र सार्यवाह पुत्र चारुदत्त ।

विदूषक—( मैत्रेय ) चारुदत्त का मित्र ।

शकार—( 'सस्थानक ) राजा का श्यालक प्रतिनायक ।

घिट—शकार का सहचर ।

संवाहक—चारुदत्त का भूतपूर्व भृत्य ( मालिश करनेवाला ) जुझाड़ी ।

चेट—( कर्णपूर ) वसन्तसेना का दाम ।

सज्जलक—मदनिका का प्रेमी ।

घेठ—( वर्धमानक ) चारुदत्त का धरेलू अनुचर ।

सूत्रधार—रूपक का प्रधान नट ।

### स्त्री पात्र

गणिका—नायिका वसन्तसेना ।

ब्राह्मणी—चारुदत्त की भार्या ।

रदनिका—चारुदत्त की दासी ( चेटी ) ।

मदनिका—वसन्तसेना की विश्वस्त दासी सज्जलक की प्रेमिका ।

विच्छिन्निका—वसन्तसेना की परिचारिका ।

चतुरिका— " " "

नटी—सूत्रधार की स्त्री ।



॥ श्री ॥

भासनाटकचक्रे

# चारुदत्तम्

‘प्रकाश’ संस्कृत हिन्दीव्याख्योपेतम्



प्रथमोऽङ्कः

( नान्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः । )

सूत्रधार—विष्णु खु अज्ज पच्चूम एव्व गेहादा णिक्खन्तस्स

नाद्यन्ते इति—नान्वा—पूरहीभूताया मंगलक्रियाया आशीर्वाद  
रूपाया वा अन्ते = समाप्तौ नान्दीविधानानन्तरमित्यर्थः । आरम्भे हि विष्णु  
विधातादिप्रयोनन मंगल नितरामावश्यक नाटकीयरचनानियमप्राप्त च कर्तव्य  
प्रथममुद्दिशन् ऋषि नान्दीति समारंभवान् । देवद्विजनृपादीनां स्तुत्याशीरन्य  
तरपर चचो नादी भवति । तस्याश्च लक्षणमुच्यमान् भरतमुनि—आशीर्वचन  
मयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपानां तस्मान्नापीति सञ्ज्ञिता इति ।  
तत इति—नान्धां च नेपथ्य एवावसितायां तत तस्मान् स्थलाद् नेपथ्यादिति  
यावत् । अथवा ततो नाम नादीविधानाव्यवहितोत्तरकाल इति । तसिद्धप्रत्ययस्य  
सावविभक्तिरुच्चात् सप्तम्यर्थाध्ययनम् । प्रविशति = रगमश्च समागच्छति ।  
कस्यात्र प्रवेश इत्याकाङ्क्षायामाह—सूत्रधार इति । सूत्रधार = प्रधाननट—  
नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयत । अथवा सूत्र = नाटकवाज तद् धारयति  
ब्रूवति उपन्यस्यतीत्यर्थः ।

( मङ्गल गान-वाद्य क वाद्य सूत्रधार आता है । )

सूत्रधार—क्यों आज उपाकाल में घर से बाहर होते ही मेरी आँतों मुख के

दुमुक्खाए पुक्खरपत्तपडिदजलविन्दू विअ चञ्जलाअन्ति विअ ने  
अक्खीणि । ( परिक्रम्य ) जाव गेहं गन्धिअ जाणामि किण्णु खु  
सविधा विहिदा ण वेत्ति । ( परिक्रम्य ) एट अम्हाणं गेहं । जाव  
पविसामि । ( प्रविश्यावलोक्य ) जह लोहीपरिवट्टणकालसारा भूमी,  
शेउब्भामणसुगन्धो विअ गन्धो, सुणिमित्तं विअ परिब्भमन्तो  
वडिवरसअजणो, किण्णु खु राविधा विहिदा । आदु दुमुक्खाए  
ओदणमच्चं विअ जीवल्लोअ पेक्खामि । जाव अग्या सहावेमि ।  
अग्ये । इदो दाव । [ किन्नु रात्वथ प्रत्यूप एव गेहाभिक्रान्तस्य  
दुमुक्षया पुष्करपत्रपतितजलविन्दू एव चनलायेते एव मेऽक्षिणी । यावद्  
गेहं गत्वा जानामि किन्नु रालु सविधा विहिता न वेत्ति । एतदस्माकं गेहम् ।  
यावत् प्रविशामि । यथा लोहीपरिवर्तनकालसारा भूमि, स्नेहोद्गावनसुगन्ध  
एव गन्ध, सुनिमित्तमिव परिभ्रमन् वरिवस्यकजन, किन्नु रालु सविधा विहिता ।

प्रत्यूप एव = उप-काले एव । अक्षिणी = लोचने, दुमुक्षया = क्षुधया ।  
पुष्करपत्रपतितजलविन्दू एव—पुष्करस्य = कमलस्य पत्रम् तत्र पतितौ एति  
पुष्करपत्रपतितौ जलविन्दू एव इत्यर्थः । गा = भवनम्, गत्वा = प्रविश्य,  
सविधा = भक्षणव्यवस्था, लोहीपरिवर्तनकालसारा—'लोही' इति पदेन लोहनि-  
मित्तरन्धनदण्ड आक्षिप्यते, अतो लोहा परिवर्तनन = अवधर्षणेन हेतुना  
कालसारा = अतीव कृष्णवर्णा इत्यर्थः । स्नेहोद्गावनसुगन्ध — रनेहरय = घृतादि-  
स्नेहयुक्तपदार्थस्य उद्गावनम् = उद्गमनम् इति स्नेहोद्गावनम् अर्थात् उद्भूतस्नेह-  
स्तेन सुगन्ध इत्यर्थः । सुनिमित्तम् = शोभन निमित्त, सुन्दर कारण वा परिवस्यक-  
जन — वरिवस् इति अव्ययपदम् 'शुश्रूषा, पूजा' इति अर्थो भवति, वरिवस्यक-  
जन = शुश्रूषकजन, वतानुष्ठापता, पञ्जुल्लनो वा इति भावः । सविधा विहिता =

कारण कमल के पत्र पर पड़े हुए जल विन्दु की भाँति चंचल हो रही हैं। तब तक  
घर के अन्दर जाकर यह पता लगाता है कि ग्याने-पीने का कोई प्रयत्न है या  
नहीं। यह रहा मेरा घर। तो प्रवेश करता है। ( प्रवेश कर और चारों तरफ  
देख कर ) लोहे के चर्तनों के धार-धार घर्षण करने से भूमि काली सी पग गइ है,  
गन्ध ऐसी आरही है जैसे घृतादि स्नेह द्रव्यों की उद्गावना ( छौक ) दन में  
उत्पन्न होती है। किसी मनोरम निमित्त के उद्देश्य से ही धार्मिक जन ( इधर  
उधर ) घूमते हुए विप्राई पदरहे हैं। तब यथा कोई ( भोजन की ) व्यवस्था है

अथवा बुभुक्षयादनमयमिव जीवलोकं पश्यामि । यावदायां शब्दापयामि । आय । इतस्तावत् । ]

( प्रविश्य )

नदी—अय्य । इअं न्हि । अय्य । णिद्धिआ गु सि आअणे । [ आर्य । दयमस्मि । आय । दिष्टया खच्चत्सागत । ]

मूत्रघार—अय्य । कि अरिथ अम्हाण गहे को वि पान्तरामो । [ आय । किमल्प्यस्मारु गह् मेषपि प्रातराश । ]

नदी—अरिथ । [ अस्ति । ]

मूत्रघार—घिर जीय । ण्य मोभणाणि भाअणाणि वन्तिआ ण्हि । [ चिर नीव । ण्व शोभनानि भोत्तनानि दात्री मव । ]

नदी—अय्य । तुय ण्ण पडियालन्ती चिद्धामि । [ आर्य । त्वायेव प्रतिपास्यन्ती निष्ठामि । ]

५ वी १५ ११११

भोजनव्यवस्था कृता इत्यर्थ । जावलोक्कम् = समग्र जगत् इत्यर्थ । आदनमय मिव = मिद्वानमयमिव शब्दापयामि = शब्देन आह्वयामि 'त्यर्थ' ।

प्रातराश — प्रात = प्रात काले अरवत् = भोग्यत इति प्रातराश — कर्मणि पथ प्रमातभो-यम् ( चल्पान ) इति लोकाभाषायाम् ।

अथवा बुभुक्षे के कारण ही मैं इस संसार के सब पदार्थों को अज्ञमय देख रहा हूँ । तब तक आर्या को बुलाता हूँ । आय । यहाँ आओ ।

( प्रवेश कर )

नदी—आय । मैं यहाँ हूँ । आय सौभाग्य से आप भी आ गए ।

सूत्र —आय । क्या घर में कोई कलेवा की व्यवस्था है ?

नदी—है ।

सूत्र०—तुम चिरजीवी हो और इसी तरह सुन्दर भोजन बेती रहो ।

नदी—आय । मैं तो बैठी आप की ही प्रतीक्षा कर रही हूँ ।

सूत्रधार—अग्ये । किं अत्थि अब्भत्थिदं । [ आर्ये । विमस्त्वभ्य  
गितम् । ]

नटी—अत्थि । [ अस्ति । ]

सूत्रधार—एव्यं देवा तुम भस्सासअन्तु । अग्ये । किं किं । [ एवं  
देवास्त्वागाश्चारगन्तु । आर्ये । किं किम् । ]

नटी—धिदं गुलं दहि तण्डुला अ सव्वं अत्थि । [ एतं गुणो दधि तण्डु-  
लाअ रार्वसस्ति । ]

सूत्रधार—एद सव्व अम्हाण गेहे अत्थि । [ एतत् रार्वसस्मा  
गेहेऽस्ति । ]

नटी—णहि णहि । अन्तलावरो । [ नहि नहि । अन्तरापथे । ]

सूत्रधार—( रारोपम् ) आ अणग्ये । एव्व दे आसा छिन्दीअदु  
अभाव च गमिस्ससि । आह चण्डप्पवातलण्डिओ विअ वरण्डी पव्वदां  
दूर आरोविअ पाडिटो मि । [ आ अनार्ये । एव ते आशा छियताम्  
अभाव न गमिअरि । अह चण्डप्रवातलण्डिअ एव वरण्ण पर्वताद् दूरमारो  
पातितोऽस्मि । ]

तेन एवा ६॥ ३॥

अभ्यर्चितम् = प्रार्थितम् वस्तु इति भाव । एवम् = अनेन प्रकारेण, ते = तत्र  
आशा = अभिलाष, छियताम् = भयगताम्, अभावण गमिअरि = अभिलषित-  
द्रव्याणा क्षय प्राप्स्यति इत्यर्थ । चण्डप्रवातलण्डित — चण्ड = उद्वेगहर प्रवात =  
वायु तेन लण्डित = उमक्षित इत्यर्थ । वरण्ण = तृणरामू इव इत्यर्थ । पर्व-

रूप०—आर्ये । तव कौन सी प्रार्थित वस्तु है ?

नटी—है ।

सूत्र०—यदि ऐसा है तो देवता तुम्हें आश्विन दें । आर्ये । क्या क्या  
( भोज्यवस्तु ) है ?

नटी—घी, गुद, दही और चावल है ।

सूत्र०—क्या ये सब हमारे घर में ही हैं ?

नटी—नहीं-नहीं, बाजार में हैं ।

सूत्र०—( मोहित होकर ) आह अनार्ये । यदि ऐसा है तो तुम्हारी भी आशा  
भङ्ग हो जाय, और तुम भी अभावग्रस्त हो जाओ । मे प्रचण्डवायु के द्वारा



नदी—मा भाआहि मा भाआहि । मुहुत्तश्च पडियालेदु अट्यो । मट्य मज्ज भयिस्मदि । लद्ध णाम ग्द । अज्ज मम उरवासस्म अट्यो महायो होदु । [ मा विभीहि मा विभीहि । मुर्त्तक प्रतिपालयत्वार्य । सर्व मज्ज भविषति । लघ नामतर । अथ ममोपवासत्वार्य सहायो भवतु । ]

मूत्रधार—किण्णामहओ अट्याण उययासो । [ किण्णामधेय आयाया उपवास । ]

नदी—अभिरूपवदी णाम । [ अभिरूपपतिर्नाम । ]

मूत्रधार—किं अण्णान्णीण । [ किमन्यनान्याम् । ]

नदी—आम । [ आम् । ]

मूत्रधार—सत्थ मय चिट्ठदु । को णु नाणि अट्याण उयवामस्म उपनेसिओ । [ सर्व तावन् तिष्ठतु । को न्विदानीमायाया उपवासस्योपदेशिक । ]

तात् = अत्युत्तमनोरथान् स्थानाच्चेति वा पातित = प्रशित ( एवमेव त्वयाऽपि भोजनरूपामाशां दत्त्वा निराशा कृत इति आशय ) ।

अभिरूपपतिर्नाम—अभिरूप = मुन्दर पतिश्चन यस्मात् वा तन्नामरूप धामामरु प्रथम् अनन वनेन पति मुन्दरो भवतीति भाव ।

अन्यजात्वाम्—अन्या जाति (= जन्म ) तस्याम् इत्यथ ।

उल्लिखित मृग-समूह की भांति पर्वत से भी दूर उठानर नीचे गिरा दिया गया हैं । ( अर्थात् जैसे मृग समूह तुफानी हवा के द्वारा पर्वत से भी ऊँचे फेंक दिया जाता है और क्रमशः नीचे गिर जाता है वैसे ही मेरी ( भोजनसम्यग्धी ) आशाएँ पहले तो उच्च से उच्च वक्षणा में झूठी रहीं फिर बाद में निराशा से चकनाचूर हो गई । )

नदी—अस्त एव भयभीत न हों । सगभर आय प्रतीक्षा करें । सब कुछ प्रस्तुत होगा । सब कुछ मौजूद है । आज मेरे उपवास के आय सहायक बनें ।

मूत्रधार—आर्या के उपवास का नाम क्या है ?

नदी—अभिरूप पति नाम है ।

मूत्र — क्या अन्य जन्म में भी है ?

नदी—हाँ ।

मूत्र —अच्छा यह सब रहने दो । इस समय आर्या के उपवास का उपदेशक कौन है ?

नटी—इमिणा वडिवस्सएण चुण्णगोट्ठेण । [ अनेन वरिवस्यकेन चूर्णगोष्ठेन । ]

सूत्रधार—साहु चुण्णगोट्ठ । साहु । [ साधु चूर्णगोष्ठ । साधु । ]

नटी—जइ अय्यस्स अणुग्गहो, तदो इच्छेव्व अम्हारिसजणजोगं कच्चि बम्हण निमन्तेदु । [ यदार्यस्यानुग्रह, तत इच्छेयमस्मादृशजनयोग्य कश्चिद् ब्राह्मण निमन्त्रयितुम् । ]

सूत्रधार—धम्मिट्ठो खु णिओओ । तेण पादरासो वि मे भविस्सदि । जइ एव्व, पविसदु अय्या । अह वि अम्हारिसजणजोगं कच्चि बम्हण अण्णोसामि । [ धर्मिष्ठ खलु नियोग । तेन प्रातराशोऽपि मे भविष्यति । यद्येव प्रविशत्वार्या । अहमप्यस्मादृशजनयोग्य कश्चिद् ब्राह्मणमन्वेषे । ]

नटी—ज अय्यो आणवेदि । ( निष्कान्त ) [ यदार्य आज्ञापयति । ]

सूत्रधार—कहि ण्णु खु दरिद्वबम्हण लभेअ । ( विलोक्य ) एसो अय्य-चारुदत्तस्स वअस्सो अय्यमेत्तेओ णाम बम्हणो इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवणिमन्तेमि । ( परिक्रम्य ) अय्य । णिमन्तिदो सि । आमन्तणस्स मा दरिद्व त्ति म अवमण्णेहि । सम्पण्ण अह्णिठव्व भविस्सदि । धिद

वरिवस्यकेन—वरिवस्यक = देवभक्त, प्रतधारको वा तेन ।

नटी—इसी वरिवस्यक ( धार्मिक ) चूर्णगोष्ठकने मुझे ऐसा उपदेश दिया है ।

सू०—साधु चूर्णगोष्ठक, साधु ।

नटी—यदि आर्य की अनुकम्पा हो, तो मैं चाहेगी कि अपने योग्य किसी ब्राह्मण को निमन्त्रित करें ।

सू०—यह अत्यन्त धर्मसङ्गत कार्य एव सङ्कल्प है । इस तरह से मेरा प्रात कालीन भोजन भी उपलब्ध होगा । तब तुम ( घर के अन्दर ) जाओ । मैं भी अपने योग्य किसी ब्राह्मण की खोज करता हूँ ।

नटी—जो आर्य की आज्ञा हो । ( निकल जाती है । )

सू०—कहाँ मे दरिद्र ब्राह्मण पाऊँगा ? ( चारों ओर देखकर ) यह चारुदत्त का समवयस्क आर्य मैत्रेय-नामधारी ब्राह्मण इधर ही आ रहा है । तब तक ( एक ही को ) निमन्त्रित करता हूँ । ( घूमकर ) आर्य ! आपको निमन्त्रण देता हूँ । निमन्त्रण का परित्याग न करें तथा मुझे दरिद्र जानकर अपमाचित भी

गुलं हि तण्डुला अ मय्य अस्ति । अयिअ न्निग्रणामामआणि  
मन्निम्नन्ति । [ इत्र नु म्नु दरिद्राण्ण मय । एव आयचाहदमस्य  
वयम्य आयमैत्रया नाम प्राक्कण न एवागच्छति । यावत्पुमिन्त्रयामि । आय ।  
निमन्निग्रतोऽमि । आमन्त्रणस्य मा र्दृष्ट इति मामवमन्यस्व । मम्पन्नमशितम्य  
मविप्यन्ति । घृण गुहा दधि तण्डुलाश्च उच्यन्ति । अयि च दक्षिणामापका  
मविप्यन्ति । ]

( नपथ्य )

अण्ण अण्ण णिमत्तहु म्त्र मय । अरिक्तआ म्त्र अह । [ अन्य  
मन्य निमन्त्रयन्तु तावद् भवान । अरिक्तस्त्वावदहम् । ]

मूत्रपार —

धिद्वगुलद्वहिसुममिद्ध घृचिअसूयायदमसम्मिण्ण ।  
सक्कारदत्तमिद्ध भुज्जीअहु भत्तमप्येण ॥ १ ॥

भाषान्तर प्राज्ञश्रेण्या म्य म्यमव दक्षिणाशब्देन म्त्रे व्यवहियते अत  
आ—दक्षिणामापका = दक्षिणास्वप्नया मापका = मुद्रा कायापगविशया भवि  
प्यन्त्याशयः ।

नपथ्य = वृषपरिग्रहस्थान अन्तर्भवनिशामाहुर्नपथ्यम् । क्वचित्तु मदिर्ना-  
कारान्तरधन नपथ्य रक्षमिष्यममाहुः ।

अरिक्तम् = अभावरहित अन्निद्रा वा अयात् आर्यचारुण दृष्टि परि  
शाय मामपि न तथा मयस्वन्यागय ।

न करें । मव कुद्ध भोज्यवस्तु उपलब्ध हागी । घी, गुद दधि धीर चावल मव  
कुद्ध ( मर घर ) है तथा दक्षिणा के निमित्त मापक मुद्रा ( = सोम की गिर्ना या  
पिकका ) भी प्रम्पुन की जायगी ।

( नपथ्य में )

तब तक किसी दूधरे को निमन्त्रिन करें । मैं अभावग्रस्त था दृष्टि नहीं हू ।  
मत्र घी गुद एवं दधि म मुमंस्हन सुगन्धित द्रव्य से सुवासित, ध्वजन

नदी—इमिणा वरिदस्सएण चुण्णगोट्ठेण । [ अनेन वरिदस्सके चुण्णगोहनेन । ]

सूत्रधारः—साहु चुण्णगोह । साहु । [ साधु चुण्णगोह । साधु । ]

नदी—जइ अउयस्स अणुगगो, तदो इच्छेणं अम्हारिसजणजो कदि बम्भणं निमन्तेहं । [ यथार्थस्मात्तुभट्, तदा इच्छेयमस्मात्तदशजनभो कसि ३ तादाण निमन्तयितुम् । ]

सूत्रधारः भम्मिहो खु णिओओ । तेण पादरासो वि मे भविस्सदि । जइ एवं, पविसइ अउया । धरं वि अम्हारिसजणजो कदि बम्भण अण्णोसाभि । [ धर्मिणं यत्तु निमोम । तेन पादरासोऽपि भविष्यति । अथेव पविशत्वार्था । अतन्मस्मात्तदशजनभोभ्य वधिदु तादाणमन्तेवे ।

नदी—जं अउयो आणवेदि । ( निष्मान्तः ) [ यथार्थं भाशापयति ।

सूत्रधारः—कदि ण्णु खु दरिदबम्भणं क्खमेव्वं । ( विजोस्य ) एसो अउय चारुदत्तस्स वअस्सो अउयमेत्तेओ णाम बम्भणो इदो एत्त धाअच्छदि जाव उ णिमन्तेभि । ( परिक्कम्भ ) अउय । णिमन्तिदो सि । आमन्तणस्स मा दरिद सि मं अवमण्णोदि । सम्पण्णं अहिदत्तं भविस्सदि । विदं

पारेवरजनेन -वरिदस्सक = देवभक्त . सूत्रधारने वा तेन ।

नदी—इसी वरिदस्सक ( धार्मिक ) चुण्णगोहमे मुझे ऐसा उपदेश दिया है ।

सूत्र—साधु चुण्णगोहय, साधु ।

नदी—यदि धर्म की अनुकम्पा हो, तो मैं पादरोगी नि अपने भोग्य किसी तादाण को निमन्त्रित करे ।

सूत्र—यह अरगत धर्मसङ्गत धर्म एवं सङ्कल्प है । इस तरह से मेरा मातृभ्रातृभ्य भोग्य भी उपलब्ध होगा । तब तुम ( धर के अन्दर ) जाओ । मैं भी अपने योग्य किसी ब्राह्मण को रोज करता हूँ ।

नदी—जो धर्म की आशा हो । ( निरुल जाती है । )

सूत्र—वहाँ जे दरिद्र ब्राह्मण पाड़ेगा ? ( धारों और देवार ) यह चारुदत्त वा समभवत्य धर्म मैत्रेय नामधारी ब्राह्मण इधर ही आरटा है । तब तक ( एक ही वो ) निमन्त्रित करता हूँ । ( सूत्रधार ) धर्म ! आपरो निमन्त्रण देता हूँ । निमन्त्रण का परिधायन न करूँ तब मुझे दरिद्र जागनर अपमानित भी

गुल नहि तण्डुला अ मध्य अत्थि । अविअ दक्षिणामासआणि भविस्मन्ति । [ क्वत्र तु खलु दरिद्रवाचण लभेय । एय आर्यचारुदत्तस्य वयस्य आर्यमैत्रयो नाम व्रात्रण इन एवागच्छति । यावदुपनिमन्त्रयामि । आर्य । निमन्त्रितोऽभि । आमन्त्रणस्य मा दरिद्र इति मामवमयस्व । मम्पन्नमशितव्य भविष्यति । घृत गुडो दधि तण्डुलाश्च गर्वमस्ति । अपि च दक्षिणामापका भविष्यन्ति । ]

( नपथ्य )

अण्ण अण्ण णिमत्तदु त्त्र भव । अरित्तओ दाव अह । [ अन्य मय निमन्त्रयतु तावद् भवान । अरित्तकस्तावदहम् । ]

मूत्रधार —

धिदगुलदहिसुसमिद्ध धूयिअसूखोघदमसम्मिण्ण ।  
सक्कारदत्तमिद्ध भुञ्जीअदु भत्तमप्येण ॥ १ ॥

भाननांतर व्रात्रणैभ्यो दय द्रव्यमव दक्षिणाशब्देन लोके व्यवहियते अत आ—दक्षिणामापका = दक्षिणास्वरूपा मापका = मुग्धा कार्पाणविशेषा भविष्यन्तीयाशय ।

नपथ्य = वेशपरिग्रहस्थान अन्तर्बनिकामाहर्नेपथ्यम् । केचित्तु मेदिनीकारानुराधेन नेपथ्य रत्नमित्ययमाहुः ।

अरित्तक = अभावरहित अदरिद्रो वा अर्थात् आर्यचारुदत्त दरिद्र परिहाय मामपि न तथा मन्वस्वन्त्याशय ।

न करें । मय कुछ भोज्यवस्तु उपलब्ध होगी । धी गुड, दधि और चायल सब कुछ ( मेरे घर ) है तथा दक्षिणा के निमित्त मापक मुद्रा ( = सोने की गिनी या सिक्का ) भी प्रस्तुत की जायगी ।

( नेपथ्य में )

तब तक किसी दूसरे को निमन्त्रित करें । मैं अभावग्रस्त या दरिद्र नहीं हूँ । मत्र धी गुड पच दधि स सुसंस्कृत, सुगन्धित द्रव्य से सुवासित भोजन

विदूषक —अण्ण अण्ण णिमन्नेहु दाव भव । अरित्तओ णव अह ।  
 ण भणामि अह अरित्तओ त्ति । किं भणसि—सम्पण्ण असण अह्निदव्व  
 भविस्सदि त्ति । अह पुण जाणामि । अह्निअमद्दुरस्स अम्बस्स अणो  
 गादाए अट्ठि ण भक्खीअदि त्ति । किं दाणि म उल्लालिअ उल्लालिअ  
 भणसि । भणामि धावुदो त्ति । किं भणसि—दन्निस्सणामासआणि  
 भविस्सदि त्ति । एसो धाआ पच्चाचक्खिदो हिअएण अणुबन्धीअमाणो  
 णच्छीअदि । अहो अच्चाहिद । अह वि णाम परस्स आमन्तणाणि त्ति  
 तक्केमि । जो अह तत्तहोदो चारुत्तस्स गहे अहोरत्तपय्यत्तसिद्धेहि  
 णाणाविघेहि हिङ्गुविघेहि ओगारणसुगन्धेहि भूक्खेयमत्तपडिच्छिदोहि  
 अन्तरन्तरपाणीएहि अमणप्पआरेहि चित्तअरो विअ बहुमल्लणहि  
 परिवुदो आअण्ठमत्त अह्निअ चच्चरवुसहो विअ मोढअखच्चएहि रोम णा  
 अमाणो दिरस खेवेमि, सो एव्व दाणि अह तत्तहोदो चारुदत्तस्स  
 णरिहदाए सम पारावदेहि माहारणवुत्ति उवजीयन्तो अण्णहि चरिअ  
 चरिअ तस्स आवास एव्व गच्छामि । अण्ण च अन्धरिअ । मम णर  
 अरथाविसेस जाणादि । अप्पेणावि तुस्सदि । बहुअ वि ओढणभर  
 भरिस्सदि ढीअमाण । ण आपदि अदीअमाण, ण पच्चाचिक्खदि । ण खु  
 अह एरिसेण ण सन्तुट्ठो । ता सट्ठीकिन्देवकय्यस्स तत्तहोदो चारुदत्तस्स  
 कारणादो गहीदो सुमणो अन्तलिक्खणवासो अ । जाव से पस्सपरिरत्ती  
 होमि । ( परिकम्पावलोक्कम् ) एसो तत्तमत्र चारुदत्तो पभादच्चदो णिअ  
 सकरुणप्पिअदसणो जहाविभवेण गिहण्येदाणि अच्चअन्तो इदो एव्व  
 आअच्छदि । जाव ण उयसप्पामि । ( निष्कान्त । ) [ अयमय निम न  
 यतु तावक् भवान् । अरिक्कस्तावदहम् । ननु मणाम्यहमरिक्क इति । किं  
 भणसि—सम्प नमशानमशितव्य भविष्यतीति । अह पुनर्जानामि । अचिरमधुरस्य

अरिक्क = धनान्निषपन नेपथ्य पुनराह्वान श्रुत्वा इव विदूषक कथयति  
 किं भणसि—सम्पन्नम् = सुपक्कम् अशानम् = भोजनम् अशितव्यम् =  
 भक्षणीयम् तवार्ये भविष्यति । आमस्य = आमफलस्य अस्व = बीजस्योप

विदूषक—सब तक किसी दूसरे को निमन्त्रित करें । मैं सबसम्पन्न हूँ । निश्चय  
 पूर्वक कहता हूँ कि मैं सबसम्पन्न हूँ । क्या कहते हो, सब कुछ स्वात्थुक्त

आत्रस्य अयोग्यतया अस्थि न भक्ष्यत इति । किमिदानीं मामुल्लास्योल्लास्य भणसि । भणामि व्यापृत इति । किं भणामि—दक्षिणा नापका भविष्यन्तीति । एष वाक्ता प्रत्याख्यातो हृदयेनानुबध्यमानो गन्वते । अहो अत्याहितम् । अहमपि नाम परत्यानन्त्रणानांति तर्क्यामि । योऽहं तत्रभवत्स्वारुदत्तस्य गेहेऽहोरात्रपर्याप्त-सिद्धेर्नानाविधेर्हिङ्गुविद्धैर्द्वारसुगन्धिभिः ब्रूजेपमात्रप्रतीष्टैरान्तरान्तरापानीयैरशन- ( शुद्धी ) इति लोके प्रसिद्ध . अयोग्यतया = भक्षणायोग्यतयेत्यर्थ , उल्लास्य उल्लास्य = उल्लस्य ( प्रलोभन दत्त्वा इति शेष ) व्यापृत = कार्यान्तरे व्यस्त , अत एव विलम्बितु वा अन्यत्र गन्तु न समर्थोऽस्मि, ( तेन हेतुना उक्त मया 'अन्यमन्य = अन्य प्राशन, निमन्त्रयतु = भोजनार्थमानयतु तावद् भवान् इति शेष ) । प्रत्याख्यात = निन्दित अस्वाङ्गतो वा, अनुबध्यमान = अनुस्त्रियमाण, गन्वते = गन्तुमिष्यते इत्यर्थ । अहो अत्याहितम् = दुर्भाग्य दुर्घटन वा आपातितम् । तत्रभवत् = मान्यस्य, अहोरात्रम् = दिवानिशम् , पर्याप्तसिद्ध = पर्याप्तहोण पक्के , हिङ्गुविद्धै—हिङ्गुना विद्धै = मिश्रितै , उद्गारसुगन्धिभि = उद्गारकाले मनोरमगन्धयुक्तै , ब्रूजेपमात्रप्रतीष्टै—ब्रूजालनमात्रेण प्रतीष्टै = उत्तरे आनीत , अन्तरान्तरपानीये—अन्तरे अन्तरे प्रत्येकभोजनमध्यकाले

नहीं खाता । अर्थात् मैं भी चारुदत्त के घर अतिमधुर पदार्थ खा चुका हूँ । अब उमकी अपेक्षा हीन अन्य के भक्षादि को खाना नहीं चाहता । फिर भी आप मुझे ही फुमलाकर या लोभ दिखाकर क्यों कहते हैं ? मैं दूसरे कार्य में लगा हूँ । क्या कहते हो, दक्षिणा स्वरूप मुद्रा भी है ? यह बेंबल बाणी से ही प्रत्याख्यान किया गया है पर हृदय से तो सर्वथा अनुमोदन किया गया है । अहो ! यह क्या हुआ ? मैं भी दूसरे के भ्रामन्त्रण की कल्पना करता हूँ । एक समय था जब कि मैं बहुविध वर्गों ( रत्नों ) में सुसज्जित पात्रों से विरं हुए चित्रकार की भाँति आर्य चारुदत्त के घरमें रात दिन पर्याप्त रूप से पके हुए नानाविध हिङ्गुना व पदार्थों से मिश्रित एवं सुगन्धित उद्गार ( उद्गार ) लाने वाले, भाँखों के सकेत पर ही प्रस्तुत हो जाने वाले एवं भोजन के समय में पीने योग्य तथा अनेक प्रकार के विशिष्ट भोज्य पदार्थों से विरा हुआ मैं आवश्यकता से अधिक खाकर आँगन के बेल की तरह मोटक खाँकों से पागुरी करत हुए सारा दिन व्यतीत कर देना था, वही मैं इस समय पूज्य चारुदत्त की दरिद्रता के कारण कवचनों के साथ साधारण वृत्ति का बहन करते हुए अन्य जगह चर कर ( अर्थात् भक्षणार्थ नाना स्थान को जाकर ) पुन उन्हीं के निवास स्थान को ( लौट ) जाना हूँ ।

प्रकारैश्चित्रकर इव बहुमल्लकैः परिवृत आकण्ठमात्रमशित्वा चत्वरूपम इव मोदक  
 छाद्य रोमन्यायमानो दिवस क्षिपामि स एवेदानीमह तत्रभवतश्चारुदत्तस्य  
 दरिद्रतया सम पारावर्त साधारणवृत्तिमुपजीवन् अन्यत्र चरित्वा चरित्वा तस्या  
 वाममव गच्छामि । अन्यथाययम् । ममोदरमवस्थाविशेष जानाति । अपेनापि  
 नृप्यति । बहुकृम्योदनभर भरित्वति दौयमानम् । न याचते श्रुतीयमान न  
 प्रयाचष्टे । न शम्बहमीदृशान न मन्तुष्ट । तत् पृष्ठीकृत वकार्यस्य तत्रभवतया  
 कृतस्य कारणाद् गृहीतानि सुमनमोऽन्तरीयवामश्च । यावदस्य पार्श्वपरिवर्ती  
 भवामि । एष तत्रभवांश्चारुदत्त प्रभातचन्द्र इव सन्ध्याप्रियदर्शनो यथाविभवान्  
 गृहद्वतायर्चयन् इत एवागच्छति । यावन्मुपमर्षामि । ]

पानीयम् = मध्यकालीनपानीयम् यद्यु त् अशनप्रकारे = भोजनप्रकारे बहु-  
 मल्लकैः = बहुवर्णकमानं आकण्ठम् = कण्ठपयन्तम् चत्वरूपम इव =  
 अगनस्यमुपलालित रूपम इव रोमन्यायमान = चर्चितस्य पुनरपि चर्चण  
 वनयन् सन् दिवस क्षिपामि = काठ्ठेप करोमि अवस्थाविशेषम् =  
 वनमानावस्थां दारिद्र्यमि-यर्थ । पृष्ठीकृतदेवकायस्य—पृष्ठ्याम् = पृष्ठीतिया  
 कृतम् देवकार्यं यन् तस्य ( चारुदत्तस्येति शेष ) अन्तरीयवात = परिधान  
 वस्त्रम् सन्ध्याप्रियदर्शन—सन्ध्याप्रियदर्शनो प्रियदर्शनरश्च इति सन्ध्याप्रियदर्शन-  
 एवभूत चारुदत्त इत एव आ-च्छगतीति भाव ।

भोजन उपलब्ध होगा ? मैं सब कुछ जानता हूँ ( अर्थात् इन सब से मैं  
 सतक हूँ ) । अत्यन्त मधुर आम के उपलब्ध न होने पर उसकी गुठली कोई  
 दूसरा भाक्ष्य यह है कि मेरा उदर ( पेट ) अवस्था-विशेष को जानता है, जो  
 थोड़े में ही सन्तुष्ट हो जाता है । यदि देने वाले हों तो अधिक से अधिक अन्न को  
 ग्रहण करता है । न देने वाले से नहीं माँगता और न उसकी निंदा ही करता है ।  
 इस प्रकार के अवस्था-विशेष से मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ ऐसा नहीं है अपितु सन्तुष्ट हूँ ।  
 इस सन्तोष के कारण पृष्ठा विधि पर देव काय को सम्पादन करने वाले मान्य  
 चारुदत्त के निमित्त पुष्प एवं परिधय ( पहनने योग्य ) वस्तु छाया हूँ । तब तक  
 इनके समीप जाता हूँ । ( घूम कर और देख कर ) यह मान्य चारुदत्त इधर ही  
 आरह है । ये प्रातःकालीन चन्द्रमा की भाँति सुन्दर एवं मलिन दिखाई पड़  
 रहे हैं । विभव के अनुसार गृह के देवताओं की अचना करते हुए इधर ही  
 आरह हैं । सब तक मैं भी इनके समीप जाता हूँ ।



( ततः प्रविशति बलिमुपहरन्नायको विदूषकश्चङ्गेरिकाहस्ता चेटी च । )

नायक—( दीर्घं निश्चयम् ) भोः । दारिद्र्यं खलु नाम मनस्विनः  
पुरुषस्य मोच्छ्वासं मरणम् । कुत ;

यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां  
हंसैश्च सारसगणैश्च विभक्तपुष्पैः<sup>१</sup> ।

तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु

नत इति—बलिम्=पूजाद्रव्यम्, उपहरन्=गृह्णन्, चङ्गेरिकाहस्ता—चङ्गे-  
रिका = पुष्पावारपात्रविशेष हस्ते यस्या मा एवभूता चेटी = दासी (रदनिका),  
विदूषक ( मंत्र्य ), नायक ( चारुदत्तश्च ) प्रविशतीति भावः ।

यासामिति । यानाम् मद्गृहदेहलीनाम् = मम गृहाणि मद्गृहाणि तेषां या  
देहल्य द्वारपिण्डिका बहिर्द्वारस्य काष्ठजण्डविशेषा तासां 'गृहावग्रहणी देहली'  
इत्यमरः । अत्र लक्षणया देहलीनाम्नापस्य चन्द्राणां 'बलि' तत्र प्रक्षिप्तं प्रचुर  
अवधान्यादिवलि, अन्तादिपूजोपहारो वा, हंस = मराल, च = पुन, मारस-  
गणैश्च = मारमाख्यपक्षिविशेषैश्च, विभक्तपुष्प — विभक्तानि पृथक् कृतानि पुष्पाणि  
अस्मिन् वा यस्य तादृश, भवति = अभूदित्यर्थः । पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु—पूर्व  
बलि = पूजोपहार, तस्मान् रूढानि = उद्गतानि, इति पूर्वबलिरूढानि यवाङ्कुराणि

( निकल जाता है । )

( इसके बाद पूजा द्रव्य लिए हुए नायक ( चारुदत्त ) विदूषक तथा चङ्गेरिक  
( चोरी = फूल रंगने की डलिया ) हाथ में लिए हुई चेटी का प्रवेश )

नायक—( दीर्घ उच्छ्वास लेकर ) भो । दरिद्रता ( निःसन्देह ) मनस्वी  
पुरुषों के लिये उच्छ्वास युक्त मरण है ।

क्योंकि—

हमारे गृह की जिन देहलियों पर बलि पड़ी रहा करती थी और जिनमें हंस  
तथा सारस खाया करते थे, आज उसी देहली पर जहाँ पहले के बलि कर्म में

१. 'विभक्तपूर्व' इति पाठ समीचीनः ।

बीजाञ्जलि पतति कीटमुखावलीढ ॥ २ ॥

विदूषक—अल दाणि भव अदिमत्त सन्तप्पिदु । पुरुसजोऽवणाणि विअ गिहजोऽवणाणि खु दसाविसेस अणुहोन्ति । आसमुद्दआणरिपण्ण विभवस्स बहुलपक्षचन्द्रस्स जोह्वापरिक्खओ विअ भवदो एव्व रमणीओ अअ दरिदभावो । [ अलमिदानी भवानतिमात्र सन्तप्पुम् । पुरुपयौवनानीव गृहयौवनानि खलु दशाविशेषमनुभवन्ति । आसमुद्ददानविपन्न विभवस्य बहुलपक्षचन्द्रस्य ज्योत्स्नापरिक्षय इव भवत एव रमणीयोऽय दरिद्रभाव । ]

नायक—न रत्नह नष्टा श्रियमनुशोचामि । गुणरसज्ञस्य तु पुरुपस्य व्यसन दारुणतर मा प्रतिभाति । कुत ,

यासु तासु एव गृहदेहलीपु कीटमुखावलीढ — कीटानां मुखै अवलीढ = खण्डित अर्द्धभुक्त इति वा बीजाञ्जलि—बीजानां यथादिबीजानामञ्जलि अर्थात् अञ्जलिपरिमितधान्यादि इत्यर्थं पतति अनेन अनुभूतपूर्वमिदं दारिद्र्यदुःखं ध्वनित । अपरश्च दशाद्वात्र विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य चेति माकण्डेयपुराण वचनाद् गृहद्वारे बलिप्रदानवर्णनं भारतीयप्राचीनसम्भ्यतां सूचयति ॥ २ ॥

आसमुद्ददानविपन्नविभवस्य—आसमुद्दम् यथा स्यात् तथा दानम् तेन विपन्न = क्षीणभावयुक्त एवभूत विभव = धनम् यस्य तस्य बहुलपक्षचन्द्रस्य = कृष्णपक्षचन्द्रस्येत्यर्थः ।

गुणरसज्ञस्य—गुणश्च रसश्च इत गुणरसौ तौ जानातीति गुणरसज्ञः तस्य गुणरसज्ञस्य - अनुभूतविभवफलसारस्येत्यर्थः । व्यसनम् = दारिद्र्यम् ।

रिस थव के अङ्कुर निकल आप हैं इन कीटों के द्वारा खण्डित (चागी हुई) बीजाञ्जलि पड़ी हुई है ॥ २ ॥

विदूषक—इस समय आपको अत्यन्त सन्ताप करना उचित नहीं है । पुरुष की युवावस्था की भाँति गृह का यौवन दशाविशेष को प्राप्त करता है । समुद्र पयन्त की सम्पत्ति को दान में विनष्ट करने वाले आपकी यह दरिद्रावस्था कृष्णपक्ष में चय हुई चन्द्रमा की कला की तरह रमणीय ही लगती है ।

नायक—मैं विनाश होने वाली सम्पदा की चिन्ता नहीं करता । योग्यता आदि गुण एवं कारुण्यदि रसके अनुभवी सद्दय पुरुष की विपत्ति मुझे असह्य प्रतीत होती है । क्योंकि—

एतत्तु मे प्रत्ययदत्तमूल्य

सत्य सखे ! न क्षयमभ्युपैति ॥ ४ ॥

( वित्ता नाटयति । )

विदूषक—कि भय अत्यदिभ्यः चिन्तेति । [ कि भयानयदिभ्यः चिन्तयति । ]

नायक—

सत्य न मे धनविनाशगता विचिन्ता

भाग्यक्रमेण हि धनानि पुनर्भवन्ति ।

एतत्तु मा दहति नष्टधनश्रिया मे

यत् सौहृदानि सुजने शिथिलीभवन्ति ॥ ५ ॥

अपमानितम् नव स्मरामि । हे सखे ! एतत्तु प्रत्ययदत्तमूल्यम्—प्रत्ययन = दान धनस्फुरमिति विश्वासेन दत्त मूल्यम्=धन यन एतादृश दत्त मे सत्यम् = मम मन सत्यसहक मन इति चरक । न क्षयम् अभ्युपैति=न कदापि क्षय प्राप्नोति ॥४॥

सत्यमिति—सत्यमेव धनविनाशगता = वित्तध्वसोपला विचिन्ता = दान्य मे = मम नास्ति = न बतते कथमित्याशङ्कामाह—हि = यत् भाग्यक्रमेण = अदृष्टानुसारेण धनानि पुनर्भवन्ति = पुनरप्यायाति । तर्हि चिन्ताधीनमित्याह—एतदिति एतत्तु = एतत्तु मा दहति = मया पीडयति तु सारुरोति यत् नष्टधन श्रिय—नष्टा धनश्री = वैभवश्री यस्य एवभूतस्य मे = मम सौहृदानि = कुटुम्बादयः मित्रवर्गा वा सुजने = मांशे सुजने सत्यपि शिथिलीभवन्ति = अर्थ

( अन्य किसी भी वाचक को ) असन्तुष्ट नहीं किया । हे मित्र ! दान दत्ता उत्तम काय है इसी विश्वास से सम्पूर्ण सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य को लुटा देने वाला सत्य ब्राह्मी मेरा मन कभी भी क्षय भाव को नहीं प्राप्त होता ॥ ४ ॥

( चिन्ता युक्त अभिनय करना है । )

विदूषक—क्या आप ऐश्वर्य की चिन्ता करते हैं ?

नायक—मित्र ! यह सत्य है कि मुझे धन के नाश की विशेष चिन्ता नहीं है । क्योंकि भाग्य के क्रम से धन पुन हो जाते हैं । परन्तु बही तो मुझे विशेष कष्ट प्रतीत होता है कि निर्धन होने पर मेरे सम्बुधग मेरे जैसे सुजन व्यक्ति में भी निरादर की भावना रखते हैं ॥ ५ ॥

अपि च—

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते

सत्त्वं हास्यमुपैति शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ।

निर्वैरा विमुखीभवन्ति सुहृद् स्फीता भवन्त्यापदः

पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ॥ ६ ॥

विदूषक—एते दाणि दासीएपुत्ता अत्थवावारा गोवदारआ विअ मसअभीदा गिहादो णिग्गच्छन्ति । धणविणासदुक्खस्स उण चिन्तिअ-

वैकल्यप्रयुक्तबन्धुतामपि त्यजन्ति, हतादराणि भवन्ति वा, एतदेव दुःखाकरोति मामित्याशय ॥ ५ ॥

दारिद्र्यादिति—दारिद्र्यात् = वनाभावात्, पुरुषस्य = लोकस्य, वाक्ये बान्धवजन = सुहृज्जन, कुटुम्बवर्ग 'सगोत्रबान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजना समा' इत्यमर । वाक्ये न सन्तिष्ठते = वचने न प्रत्येतीति भाव । 'समवप्रविभ्य स्थ' इत्यनेन सन्तिष्ठत इत्यत्रात्मनेपदम् । सत्त्वम् = बलम्, मनस्विता वा हास्यम् = हासविषयम् उपैति = प्राप्नोति, शीलशशिन = चारित्र्यचन्द्रस्य, कान्ति = दीप्ति शरीरसौन्दर्यम्, वा, परिम्लायते = सर्वतो ग्लानिं, म्लान वा गच्छति । निर्वैरा = अत्यनुरक्ता, सुहृद् = मित्राणि, विमुखीभवन्ति = प्रातिकूल्यमाचरन्ति, दारिद्र्यं प्रति न गच्छन्ति कार्याभावान् वा ( दारिद्र्यपुरुषस्य ), आपद = विपत्तय, स्फीता = विणाला, बहुला वा, भवन्ति = जायन्ते, यत् पाप कर्म = निन्दित कर्म, चौर्यादिकमिति यावन् । परै = सामान्यजनं अपि, कृतम्—आचरितम् भवेत् तन् कर्म = पापजनक कुलित कर्म, तस्य = दारिद्र्यपुरुषस्य, सम्भाव्यते = अनुमीयते अर्थाभावात् इदमनेनैव कृतमिति जनं निर्णायक इति भाव ॥ ६ ॥

और भी—

दारिद्र्यता के कारण, पुरुष का कुटुम्ब व कुटुम्बवर्ग वाणी में वास्था नहीं रखता, मनस्विता हास्य वा विषय बन जाती है, शीलयुक्त ( पुरुष ) की कान्ति भी मलिन हो जाती है । बिना शत्रुता के ही मित्रलोग विमुख हो जाते हैं, आपत्तियाँ बड़ी हो जाती हैं और जो पाप कर्म साधारण जन के द्वारा बरित होता है, उसे भी दारिद्र्यता (अर्थाभाव) के कारण लोग ठसीका किया हुआ मानने लगते हैं ॥६॥

विदूषक—इस समय ये कम्बरन रुपया-पैसा, मशरू ( मच्छड़ ) से भयभीत गडेरियों के बच्चों की तरह अपने घर से बाहर निकलते हैं । वसन्त ऋतु में सरकण्डे

माणस्स वसन्ते बुद्धस्स सरत्थम्बस्स विअ अङ्कुरङ्कुरा उम्ममान्त ।  
 ता अल भवदो सन्दावेण । [ एत इदागी दास्या पुत्रा अर्थध्यापारा गोप  
 दारका इव मशकमीता गृहाद् निर्गच्छन्ति । धनविनाशदुःखस्य पुनश्चिन्त्यमानस्य  
 वमन्त बुद्धस्य शरस्तम्बस्यवाङ्कुराङ्कुरा उद्धमन्ति । तदल भवत सन्तापेन । ]

नायकः—वयस्य । किमर्थं सन्ताप करिष्ये । किञ्चाह दरिद्र,  
 यस्य मम,

विभवानुवशा भार्या समदु खसुखो भवान् । <sup>11 १५ ५ ५६</sup>  
 सत्त्व<sup>१</sup> च न परिभ्रष्ट यद् दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥ ७ ॥

( यथा ) वसन्ते = वसन्तमासे बुद्धस्य = परिपक्वस्य शरस्तम्बस्य = शर  
 गुच्छस्य ( शरपत' शरकण्ठा' इति लोभभाषायाम् ) अङ्कुराङ्कुरा — अङ्क  
 रात् अङ्कुरा उद्धमन्ति = उच्चलन्ति निर्गच्छन्ति वा ( तथैव ) धनविनाश  
 दुःखस्य चिन्त्यमानस्य ( जनस्येति भाव ) नानाविधाचिन्ताङ्कुरा' उद्धमन्ति =  
 प्रादुर्भवन्तीत्यर्थः ।

विभवेति । यस्य मम विभवानुवशा — प्रचुरविभववशात् सचदा अनुवशा=  
 अनुकूलकार्यकारिणी भार्या = पत्नी अस्ति ( तथा ) समदु खसुख = सम्पत्तौ  
 विपत्तौ च एकमात्र इत्यर्थः भवान् = मैत्रय ( विदूषक- ) अस्ति सत्त्वम् = मन  
 च न परिभ्रष्टम् । यत् = सत्त्वादिरक्षणम् दरिद्रेषु = अस्मादहरोषु माग्यहीनेषु दुर्लभम्

के जैसे अङ्कुरों में से अङ्कुर निकलते हैं वैसे ही धन विनाश से दुःखी एवं चिन्तित  
 ( व्यक्ति ) को और भी नाना प्रकार की चिन्ता के अङ्कुर पैदा होते रहते हैं ।  
 इसलिये आपको सन्ताप नहीं करना चाहिए ।

नायक—मित्र ! मैं क्यों धा के लिये सन्ताप करूँ ? क्या मैं दरिद्र हूँ ?  
 किस मेरे—

विपुल विभव के कारण सचदा पास रहने वाली भार्या तथा सुख एवं दुःख में  
 समान रूप से आप जैसे सहृदय वंशु ( मित्र ) साथ है और सत्त्वशाली मन भी  
 परभ्रष्ट नहीं हुआ है जब कि ये तीनों दरिद्रावस्था में दुर्लभ हैं । ( भावाथ यह है  
 कि चाहेदत्त की ऐसी दशा में भी गुण ग्रहिणी पत्नी, सहृदय मित्र तथा सम्पन्न  
 गामी मन का जब सान्निध्य उपलब्ध है तो वह सबसे धनवान है । ) ॥ ७ ॥

( तत प्रविशति गणिका सम्भ्रान्ता विटेन शकारेण चानुगम्यमाना । )

शकार — चिद्ध चिट्ठ वशञ्चशोणिए । चिट्ठ,

किं यासि धावसि प्रधावसि प्रखलन्ती

शाधु प्रसीद न मार्यसे चिट्ठ दाव ।

कामेण शम्पदि हि उज्जह मे शलीलं

अङ्गालमज्जपडिदे विश्व चम्मखण्डे ॥ ८ ॥

[ तिष्ठ तिष्ठ वसन्तसेने तिष्ठ,

किं यासि धावसि प्रधावसि प्रखलन्ती

साधु प्रसीद न मार्यसे तिष्ठ तावत् ।

कामेन सम्प्रति हि दह्यते मे शरीर-

मङ्गारमध्यपतितमिव चर्मखण्डम् ॥ ८ ॥ ]

अस्ति, अत एतद्-दुर्लभत्रयसान्निध्यात् अह सर्वसम्पन्न अस्मि नाह दरिद्र इत्याशय ॥ ७ ॥

‘तिष्ठ तिष्ठ’ इति आवेगे द्विरुक्तम् ।

‘शकारो राष्ट्रिय स्मृत’ इति वचनान् शकारस्य भाषा राष्ट्रिया विज्ञेया । शकार पलायनपरा वसन्तसेनामनुसरन् कथयति—किमिति—( त्वम् ) प्रखलन्ती = खलितचरणा, किं = कथ यासि, धावसि, प्रधावसि=अति वेग गच्छसीति भाव । साधु प्रसीद = मयि प्रसन्ना भव, न मार्यसे = नाह त्वा हन्मीत्यर्थ, तिष्ठ = शीघ्रगमनात् विरता भव, तावदिति वाक्यालङ्कारे, किंवा यावत्काल वयं त्रुम तावदिति कालनिर्देश, अङ्गारमध्यपतितम् = प्रज्वलिताग्निमध्ये पतितम्

( तव विट और शकार से पीछा को गई सम्भ्रान्त एव व्याकुल गणिका का प्रवेश । )

शकार (= राजा का साला) — ठहरो, ठहरो वसन्तसेना, ठहरो ।

क्यों जा रही हो, ( क्यों ) दौड़ रही हो ? नीचे ऊँचे मार्ग में लड़खड़ाती हुई भी ( अत्यन्त वेग से ) दौड़ रही हो । मेरे ऊपर प्रसन्न हो ओ । ठहरो, मैं तुम्हें नहीं मारूंगा । इस समय मेरा शरीर भाग में पड़े हुए चर्म खण्ड की तरह काम-रूपी अग्नि से जल रहा है ॥ ८ ॥

विट—वसन्तसेने ।

८५

किं त्व भयेन परिवर्तितसौकुमार्या  
नृतोपदेशविशदौ चरणौ क्षिपन्ती ।  
उद्भिन्नचञ्चलकटाक्षनिविष्टदृष्टि  
ध्याघ्राणुसारचकिता हरिणीव यासि ॥ ९ ॥

शकार—भावे । एशा गच्छद्द वशाश्चशोणिआ,

वर्मलण्डमिव = मांसलण्डमिव सम्प्रति = अद्युना हि मे = मम शरीरम् कामेन =  
मदनग्निना दह्यते = सन्तप्यते पीब्यते इति भाव ॥ ८ ॥

शुद्धमन्दगामिनी वसन्तसेना भीतिविह्वलतया द्रुतगामिनीमवलोक्य तदनु  
गामी विट आह—किमिति—त्वम् = वसन्तसेने भयेन = भीत्या परिवर्तितसा  
कुमार्या—परिवर्तित = द्रुततमगमनाय परित्यक्त सौकुमार्य = गमनशुद्धता मन्थर  
गमनमिति यावत् यया सा एवभूता सती नृतोपदेशविशदा—नृतस्य = माषा  
भयस्य इत्यर्थे भवेद् भावाभय नृत नृत्य ताललयाभयम् इति दशरूपके ।  
उपदेश = शिष्याणाम् तत्र विशदो=भूरिदक्षौ निदापनर्तनादिकलाभिज्ञौ इति यावत्  
एतादृशौ चरणौ क्षिपन्ती = क्षिप्र पातयन्ती वहन्ती वा ( तथा ) उद्भिन्नचञ्चल-  
कटाक्षनिविष्टदृष्टि = उद्भिन्नस्य = अत्यन्तव्यग्रश्च अतएव चञ्चलश्च = चपलश्च एता  
दृश कटाक्ष = अपाङ्गदृष्टि कटाक्षोऽपाङ्गदशन इत्यमरः । तेन निविष्टा एवभूता  
दृष्टिर्यस्या सा तादृशौ ( सती ) अर्थात् कियद् दूरे पापिष्ठौ स्त इत्याननमीपत्  
परावत्य तिर्यङ् नयनेन समीतिमवलोक्य तीत्यभिप्राय । ध्याघ्राणुसारचकिता=  
ध्यात्रस्य अनुसार = अनुगमन परचाद्भावन वा तेन चकिता = भयभीता चञ्चला  
वा एवभूता हरिणी इव = मृगीव किं = कथं केन हेतुना वा यासि = गच्छसि ।  
त्वस्नेहमूत्रनिवद्धौ ( विटशकारौ ) इत्या मीतिर्नैव विधेयति भाव ॥ ९ ॥

विट—अयि वसन्तसेने !

तुम मय के कारण अपनी सुकुमार गति को परिवर्तित करती हुई एव नृत  
कला में एव ( दोनों ) चरणों को रखती हुई उद्भिन्न एवं चञ्चल कटाक्षों से  
हमारे ऊपर आघात करती हुई तथा ध्याघ्र के द्वारा पीछा की गई अतएव तरी  
हुई हरिणी की तरह क्यों जा रही हो ? ॥ ९ ॥

शकार—भाव ! यह वसन्तसेना जा रही है ।

दुवेष्टि अम्हेष्ट्यणुवन्धवन्ती जद्वा शिवाली चिअ कुवकुलेष्टि ।  
शणपुला मंढलणावद्वाशा शचेष्टणं मे हल्लअं हलन्ती ॥ १० ॥

[ भाव । एषा गच्छति वसन्तरोना,

द्वाभ्यामावाभ्यामनुवध्यमाना यथा शृगालीव कुक्कुराभ्याम् ।

शणपुला मंगलानादहासा सचेष्टन मे हृदय हरन्ती ॥ १० ॥ ]

विट.—वसन्तरोने ।

किं त्वं पदात् पदशतानि निवेशयन्ती

नागीच यासि पतगन्ध्रभयाभिभूता ।

वेगादहं प्रचलितः पवनोपमेयः

शकार इति—भाव ।—भावगति चिन्तयति गूढतत्त्वमिति भावो विद्वान् ,  
तरगम्बोधने हे भाव । = हे विद्वान् , 'भावो विद्वान्' इत्यमर ।

द्वाभ्यामिति—द्वाभ्याम=आवाभ्याम् ( विटशकाराभ्याम् ), अनुवध्यमाना=  
अनुगम्यमाना एषा वसन्तरोना कुक्कुराभ्याम् 'अनुगम्यमाना शृगालीव गच्छति =  
धायति ( तथा ) शणपुला = नृपुत्रण रातः वर्तमाना इत्यर्थ । मंगलानादहासा—  
मंगला = कान्ची तस्या नाह = शब्द स एव = उद्गातः यस्या रा एषा  
मे = मम, गचेष्टनम् = सायरण तर्गादिपुर्णम् , भाग्ययुक्तम् हृदयम् हरन्ती ( गच्छति  
इति शेष ) ॥ १० ॥

तथापि वेगात्पलायमाना तां विलीयग विटः पुनरपि वदति—किमिति—त्वम्  
परात् = पशमपदात् अतपदानि निवेशयन्ती = पदशतद्वरे द्वितीयचरण निशिपन्ती  
इति भावः, पतगन्ध्रभयाभिभूता—पतमानाम् उन्ध्र = श्रेष्ठ ( गरुड ) तस्मान्  
भयम् तेन अभिभूता = आक्रान्ता नागीच = सर्पिणीव किम् = क्व यासि=  
गच्छसि ? । पवनोपमेयः = पवनेन तस्य आत्म वेगात् प्रचलित अपि किं त्वा

हम धोनों से पीछा की गई यह वसन्तसेना, श्वान ( कुत्ता ) से पीछा की  
गई शृगाली की भांति भाग रही है, तथा नृपुत्र के महित मंगला ( काशी ) के  
शब्द भाग्ययुक्त मेरे हृदय ( मन ) को हरण कर रहे हैं ॥ १० ॥

विट—वसन्तसेना,

तुम क्यों गरुड के भय से घबरा नागिनी की तरह शीघ्र, एक पर में सैकड़ों  
पैर रखती हैं ता रही हो ? पाव के समान में शीघ्रता से चल कर क्या तुम



किं त्वां ग्रहीतुमथवा न हि मेऽस्ति शक्तिः ॥ ११ ॥

गणिका—( समन्ताद्बलौक्य ) पल्लवअ । पल्लवअ । परहुदिए । परहुदिए । महुअरअ । महुअरअ । सारिए । सारिए । हृदि, णट्ठो मे परिजणो । प्थ सअ प्य अप्पा रक्खिदव्वो । [ पल्लवक । पल्लवक । परश्रुतिके । परश्रुतिके । मधुकरक । मधुकरक । शारिक । शारिके । हा धिक नष्टे मे परिजन । अत्र स्वयमेवात्मा रक्षितव्य । ]

शकार—विलाय विलय णाए । विलय पल्लव वा, परहुदिअ वा, महुअर वा, शालिअ वा, शल्य वशब्दमाश वा । ये के तुम परित्तअशि । किं वाशुदेवे शयपट्टणेशे कुन्तीशुवे वा जणमेज्जए वा । ११५५५५५५  
अह तुम गह्मिअ केशहत्थे दुःशाशले शीदमियाहत्तामि ॥ १२ ॥  
[ विलय विलय ज्ञाते । विलय पल्लव वा परश्रुतिके वा मधुकर वा शारिका वा सर्व वस-तमास वा । क कर्त्वां परित्रास्यते ।

किं वासुदेव शयपत्तनैश कुन्तीकृतो वा अनमेज्जो वा ।

ग्रहीतुम् (समर्थ) अथवा त्वां ग्रहीतु मे=मम शक्ति न अस्ति हि=नास्त्यत्र ॥११॥

पल्लव इति—पल्लव इव पल्लवक स्तत्सम्युद्धौ हे पल्लवक । नूतनकिस्त्वम्य तुत्परत्तर्णशरीरत्वात् पूर्वोक्तनामधेयो वस-तसेनापृथक् परश्रुतिका नाम्नी दासी तत्सम्बोधने परश्रुतिके । सज्ञायाम् कन् एव मधुकरव । शारिके इत्युभयत्रापि विवेचनीयम् सहृदये । मे = मम परिजन = रक्षक नष्ट अत्र = अस्यां परि स्थिता स्वयमेव आत्मा रक्षितव्य स्वकीयां रक्षामह कुर्वाम् इति भाव ।

शकारो लोऽविधुतवीराणामपि रक्षणासामर्थ्यं प्रदर्शयति-किमिति । वासुदेव =

परश्रुते के लिये समर्थ हैं; अथवा तुम्हें परश्रुते के लिये मुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥११॥

गणिका—( चारों ओर देखकर ) पल्लवक । पल्लवक । परश्रुतिके । परश्रुतिके । मधुकरक । मधुकरक । शारिके । शारिके । हा धिक् । मेरा परिजन नष्ट हो गया । ऐसी वृथा मैं मैं स्वयं अपनी रक्षा करती हूँ ।

शकार—ओ औरत ! विलाप करो पल्लवक परश्रुतिका मधुकरक शारिका इन्हीं को क्यों ( धिक ) इकट्ठे वस-तमास को भी सुलाओ । ( देखता हूँ ) कौन तुम्हारी रक्षा एवं सहायता करता है ?

वया वासुदेव ( श्रीकृष्ण ) या रामान के स्वामी ( यमराज ) या कुन्तीपुत्र ( अर्जुन ) या जयमेजय तुम्हारी रक्षा करेंगे ? ( अर्थात् कोई नहीं तुम्हारी रक्षा

अह त्वा गृहीत्वा केशहस्ते<sup>१</sup> दुःशासन सीतामिवाहरामि ॥ १२ ॥ ]

विट — वसन्तसेने । सर्वत्र भयानभिद्गृहदयं मां कुरु । पश्य,

परिचिततिमिरा मे शीलदोषेण रात्रि-

श्रीकृष्ण कि त्वा परित्रास्यते ? इति अध्याहार, एवमग्रेऽपि यद्योचित पदे एतन्निवे-  
शनीयम् । वा शवपत्तनेश — शवानाम् पत्तनम् = स्थानम्, नगर वा श्मशानम्  
तस्य ईश = यमराज, वा = अथवा कुन्तीपुत्र = कर्णोऽर्जुनो वा तयोरेव धनुर्ध-  
रत्वेन प्रसिद्धत्वादिति आशय । कुत्रचित् युधिष्ठिर इति पर्यायोऽपि भवितुमर्हति  
युधिष्ठिरस्य धार्मिकत्वाद् धार्मिकस्यैव पुरुषस्य परनारीरक्षणसम्भवात् इत्याशय  
जनमेजय = परिक्षितपुत्र अर्थात् न कोऽपि परित्रास्यत इति भाव, अह ( त्वा  
केशहस्त = केशसमूहमित्यर्थ 'पाश पक्षस्य हस्तश्च कलापार्थं कनात्परे  
इत्यमर, ( तव इति शेष ) गृहीत्वा = धृत्वा दुःशासन सीतामिव आहरामि =  
आकृष्य नयामीत्यर्थ । वस्तुतस्तु दुःशासन द्रौपदीमिव इत्येव समुचित पाठ  
परन्तु शकारस्य अविवेकपूर्णोक्ति उपमा श्रेण्या असत्पक्ष नावगाहते, यद्योक्त-  
मभियुक्तै — 'अपार्थमन्कम व्यर्थं पुनरुक्त हतोपमम् । लोकन्यायविरुद्धं शकार-  
वचन विदु । अपरस्मा, 'आगमलिगविहीन देशकालन्यायसमयविपरीतम् ।  
व्यर्थैकार्यमपार्थं भवति हि वचन शकारस्य ॥ एवमेवोत्तरोत्तरमपि विवेचनीयम्  
सहृदयै ॥ १२ ॥

सर्वत्र = सर्वस्मिन् काले भयानभिद्गृहदयम् = भयशून्यमिति भाव, कुरु =  
जानीहि, धातूनामनेकार्यत्वात् इत्यर्थो भवति ।

परिचितेति — शीलदोषेण = स्वभावदोषेण, चौर्यादिदोषेण वा मे रात्रि परि-

कर पायेगा ) मैं तुम्हारे केशों को पकड़कर दुःशासन, जैसे सीता को चलात्  
खींचकर ( सभा के बीच ) लाया था, वैसे ही खींचकर लाता हूँ ॥ १२ ॥

विट — क्षयि वसन्तसेने ! मुझे सब परिस्थिति में भयरहित जानो । देखो,

मेरे स्वभाव दोष के कारण, रात्रि का समय ( मेरे लिये ) विशेष परिचित है

१ 'केशहस्ते' इत्यत्र केशहस्तम्' एतदेव पाठो रमणीय स्यात् ।

२. यह शकार लोगों की योग्यता पर फनती है जिन्हें ऐतिहासिक एवं पौराणिक  
जानकारी नहीं के बराबर होती थी और जिनकी अर्थव्यवस्था भीटी एवं मनगढ़ चला  
करती थी । यही बात प्रस्तुत शकार में भी दृष्टिगोचर हो रही है ।



अनयति शत्रु रोषं प्रथमो भिष्यमानः  
 किमिष न कथिमानां हृष्यकरं मत्प्रिधानाम् ।  
 अनयति शमर्थं शत्रुघ्नीर्षो करोद्भयं  
 यस्मत्पुत्रप्रपुत्राया मां क्षरीरं न रक्ष ॥ १४ ॥

मणिका (आत्मगतम्) अनयति शत्रु रो भावति । [ अनुभवोऽपि  
 र शत्रुवत् भावति । ]

शकारः—यथाप्रयोगिणाम् । हृष्टः शत्रु भावे भणति । शत्रुघ्निजदि सु  
 द्वाय शक्ति-अनयति शत्रुघ्नीर्षो अणयति । ऐष्य दाशु !

शक्ति शत्रु शत्रुघ्नीर्षो शक्तिगीतमेवम्  
 शिष्येभि क्षीर्षां गद्य मात्तव इत्या ।

असं त अस्मत्प्रतिपक्षिणो सोऽपि

मते शत्रु जो शत्रु ण णाम जीयइ ॥ १५ ॥

अनयतीति—प्रथमं चिनयः चिनयमानः प्रत्याख्यायमानः शत्रु रोषम्  
 प्रोभम् अनयति शत्रु = निश्चयेन, मत्प्रिधानां कथिमानाम् किमिष न हृष्टकरम्  
 अर्थात् न किमपि अकरणीयम् रयादिति भावः । अयम् शमर्थः—तथादिकूर  
 वर्गशक्तः शत्रुघ्नीर्षः—शत्रुघ्न क्षीर्षः करः—हरत' स्वाम् अनुनयति—प्रार्थयति  
 अतः ( अनुनयपरिपाठनं कृत्वा ) मां क्षरीरं न शत्रुघ्नितप्रपुत्राया—शत्रुघ्न्या कम्  
 तत्र प्रपुत्रा शत्रुघ्न्याः शत्रु = परिपारय अर्थात् नम मिथिना शत्रुघ्नितर्षः इति भावत तथा  
 कृष्ट इति भावः ॥ १४ ॥

अनयति - अनयति शत्रुघ्नीर्षः ।

असं शत्रुता शत्रुता अनुभव निश्चय ही क्रोध को उत्पन्न कर देता है । मेरे जैसे  
 क्रोहित जग को छिने सुख भी सुख न भाई है । ( तथकर्मां ई ) शमर्थ, शत्रुघ्नी शत्रुघ्न  
 को शरण वि.प हृष्ट शत्रु हाग ( शत्रु रो ) शिष्येभ्य करता है कि. ( अनुनय को  
 शक्ति करके ) शत्रुघ्नीर्ष मेरे शरीर को शत्रुघ्नित तथ की प्रपुत्रा रो मत्प्रिधानो ॥ १५ ॥

मणिका—(रतगत) शत्रुघ्नीर्ष अनुभव भी शत्रु अय उत्पन्न करता है ।

अणयत् शत्रुघ्नीर्षो ! माभवीय मित नचित न-हते हैं । शत्रुघ्नीर्ष जन से जो  
 अनुभव मिलता है वह शत्रुघ्नीर्ष को का—शत्रुघ्न कीमत रतता है । शत्रुघ्नी, शत्रुघ्नी ।

[ वसन्तसेने ! मुग्ध भावो भणति । बहुमान्यते खलु तावद् बलवज्जन दुर्लभोऽनुनय । परय वासु ।

अग्नि खलु तीक्ष्ण शिखिप्रीवामेचकः क्षिपामि शीर्षं तव मारयेऽथवा ।

अल त्वस्मादशकान् रोपयित्वा मृतं खलु यो भवति न नाम जीवति ॥१५॥]

गणिका—अप्य । कुलउत्तनणस्स शीलपरितोषोपजीविणी गणिआ खु अह । [ आय । कुलपुत्रजनस्य शीलपरितोषोपजीविनी गणिका खल्वहम् । ]

विट.—अत खलु प्रार्थ्यसे ।

बलवज्जनदुर्लभोऽनुनय — बलवज्जनात् दुर्लभं यदा कदा ऽप्य' अनुनय' अपि लोकै बहुमान्यते = शिरो धार्यते परिपास्यते इत्यथ । तस्मान् अस्माकम् प्रार्थनां स्वीकुरु इति फलितार्थ' । हेवासु ! = हे बाले ! बाला स्याद्दसु इत्यमर' । अत्र वासु शब्द' कोमलात्मन्त्रयो प्रयुक्त । तस्यैव वासु श'दस्य सम्बुद्धौ वासु' इति रूपम् भवति । परय = विचारय इति भाष ।

असिरिति—शिखिप्रीवामेचक — शिखिन = मयूरस्य प्रीवा तद्वत् मेचक' = श्याम' तीक्ष्ण = निशित असि' = कृपाण मे = मम ( हस्ते अस्ति इति रोप अनेन ) तव शीर्षम् = मस्तक क्षिपामि भूमौ पातयामीति भाव अथवा त्वाम् मारये प्राणविनाश करोमि । अस्मादशकान् = मद्रिधान् 'नान् रोपयित्वा अलम् = व्यर्थं न किमपि फल सेत्स्यतीति भाष । कुत = इत्याह—मृतरिति । यो जनो मृत भवति स जनो खलु = निश्चयेन न जीवति नाम - न प्राणान् धारयति । अत अस्मदस्तगतत्वेन तव मरणस्य अनिवार्यतया पलायन निरर्थक' मिति भाव ॥ १५ ॥

शीलपरितोषोपजीविनी—शीलेन परितोष इति शीलपरितोष सेन जीवतीति शीलपरितोषोपजीविनी गणिका = वैश्या ।

मयूर के कंठ के समान श्याम मेरा तीक्ष्ण ( तेज ) तलवार है । ( इसलिये ) तुम्हारे सिर को काट डालूँगा अथवा तुम्हें मार दूँगा । मेरे जैसे जन को क्रोधित करना उचित नहीं है । और जो मर जाता है वह जीवित भी नहीं होता ॥ १५ ॥

गणिका—भाय, मैं कुलपुत्रजन के शीलरूपी परितोष से जीवित रहनेवाली वैश्या हूँ ।

वि—इसीलिये तो मैं तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ।

विटः—( आत्मगतम् ) आनुष्टुप्मात्मानं न जानाति मूल । ध्वस इत्युक्ते श्रान्त इत्यवगच्छति । अपि च,

अभिनयति वचांसि सधगात्रैः ३  
किमपि किमप्यनवेक्षितार्थमाह ।

अनुचितगतिरप्रगल्भवाक्य  
पुरुषमयस्य पशोर्नवावतार ॥ १६ ॥

( प्रकाशम् ) यसन्तसेने । किमिदं मत्सन्निधी वशापासविरुद्धम्  
भिहितम् । परय,

आनुष्टुप् = निन्दितम् इत्यर्थः ।

अभिनयतीति—( एष ) सर्वगात्रै वचांसि अभिनयति = शरीरावयव  
भङ्गिभि मनोभाव प्रकटयतीति भाव किमपि किमपि अनवेक्षितार्थम्—न  
अनवेक्षित इति अनवेक्षित = अनालोचित अर्थ = प्रयोजन यस्मिन् तस्य  
आह = कथयति । पुरुषमयस्य = पुरुषरूपस्य पशो = जीवस्य ( एष ) अनुचित  
गति—अनुचिता गति अस्य तथा अर्थात् निन्दितव्यवहार इत्यर्थः  
अप्रगल्भवाक्य—अप्रगल्भ = प्रतिभाशून्यम् वाक्य यस्य स नवावतार =  
नवीनोत्पत्ति इत्यर्थः ॥ १६ ॥

वेशापासविरुद्धम्—वेशे = गणिकाभवने वाम = स्थितिस्तस्य वेश्या  
भावस्येतिभावः विरुद्धम् = अनुचितम् विपरीतम् श्रान्त इत्युक्तवचन

विट—( स्वगत ) यह मूल ( शकार ) अपने को निन्दित नहीं समझता ।  
( वसन्त सेना के द्वारा ) ध्वस (= विनाश पूर्व घृणा सूचक ) कहे जाने पर भी  
श्रान्त' (= थका हुआ ) ऐसा समझ रहा है ।

और भी—

यह संपूर्ण अर्थों ( की भाव भङ्गिमा ) के द्वारा ममोगत भाव को प्रकट कर  
रहा है तथा कुछ-कुछ अस्पष्ट अभिप्राय को कह रहा है । यह पुरुष रूपी पशु  
( जीव ) का एक नया अवतार है, जिसका व्यवहार निन्दित एवं वाक्य प्रतिमा  
शून्य है ॥ १६ ॥

( प्रकाश रूप से ) वसन्त सेने ! तुमने क्यों मेरे सामने वेश्याओं के विरुद्ध  
वाक्य कहा ? देखो—

नायक—मूख ! यथाविभवेनाच्यताम् । भक्त्या तुष्यन्ति दैवतानि ।  
तद् गम्यताम् ।

विदूषक—एआइ अह कह गमिस्म । [ एकाक्यह कय गमिप्यामि । ]

नायक—रन्निवे । अनुगच्छात्रभवन्तम् ।

रदनिका—ज भट्टा आणवेदि । [ यद् भर्ताहापयति । ]

विदूषक—भोटि । नीय अह णडस्स । [ भवति । दीपमह नेप्यामि । ]

नायक—यथा भवान् मन्यते तथास्तु ।

विदूषक—( दीप गृहीत्वा ) भो रदणिण । अवाबुद पक्खदुवाल ।  
भो रदनिके ! अपावृणु पक्खारम् । ]

रदनिका—तह । ( नाट्येन द्वारमपावृणोति ) [ तथा । ]

( गणिना बलान्तेन दीप निर्वापयति । )

विदूषक—अविहा ! अविहा ! । [ अविहा ! अविहा ! । ] १५२ (

नायक—धयस्य । किमेतत् ।

नायक इति—यथाविभवम् = विभवमनतिव्यय यथा स्यात्तथेति भाव ।  
अविहा ! इति चेत् अग्ययम् ।

नायक—मूर्ख ! अपनी धार्मिक स्थिति के अनुरूप पूजा करो । भक्ति से ही  
देवता सन्तुष्ट होते हैं । भत जाओ ।

विदूषक—मैं अकेला कैसे जाऊँगा ?

नायक—रदनिके ! इनके साथ जाओ ।

रदनिका—जो महाराज की आज्ञा ।

विदूषक—माननीय मैं दीप लूँगा ।

नायक—जो आपकी इच्छा हो वहीं कीजिए ।

विदूषक—( दीप हाथ में लेकर ) भयि रदनिके ! पारवद्दार खोलो ।

रदनिका—अच्छी यात है । ( अभिनय द्वारा पारवद्दार ( दरवाजा ) को  
खोलती है । )

( इसी बीच मैं द्वार के खुलते ही वहीं बैठी हुई गणिका बसन्तसेना बच्चा  
खल के द्वारा दीप को धुसा देती है । )

विदूषक—हाय ! हाय !

नायक—मित्र ! क्या हुआ ?

विदूषक—अवाबुदपक्खदुवारपिण्डीकिदप्पविट्ठेण राअमगसङ्किण्णेण वादेण सहसा णिग्गच्छन्तस्स मम हत्थे णिव्वाबुदो दीवो । [ अथावृतपक्षद्वारपिण्डीकृतप्रविष्टेन राजमार्गसङ्कीर्णेन वातेन सहसा निर्गच्छतो मम हस्ते निर्वापितो दीप । ]

नायक—मूर्ख ! धिक् त्वाम् ।

विदूषक—अप्पं खु मे अवरद्ध । रदणिए । गच्छ, चउप्पहे म पडिवालेहि । जाव अह वि अब्भन्तरचउस्सालावो दीवं गह्मिअ भावच्छामि । ( निष्क्रान्त । ) [ अल्प खलु मेऽपराद्धम् । रदनिके ! गच्छ, चतुप्पे मा प्रतिपालय । यावदहमप्यभ्यन्तरचतुश्शालाद् दीप गृहीत्वाऽऽगच्छामि । ]

चेटी—अय्य ! तह । ( परिक्रामति । ) [ आर्य ! तथा । ]

गणिका—दिट्ठिआ मम पवेशणिमित्तं अवाबुदं पक्खदुवालं । अलं चारित्तभएण । जाव पविसामि । ( अभ्यन्तर प्रविश्य तिष्ठति । ) [ दिष्ट्वा मम प्रवेशनिमित्तमपावृत पक्षद्वारम् । अल चारित्रभयेन । यावत् प्रविशामि । ]

अभ्यन्तरचतु शालात्—चतसृणा शालानाम् समाहार इति चतु शालम् । अभ्यन्तरस्य, अभ्यन्तरस्य वा चतु शालम् तस्मात् तथा ।

प्रवेशनिमित्तम् = प्रवेशस्य निमित्तम् अथवा प्रवेश निमित्त कारणम् यस्मिन् तत्तथा, अथावृतम् = उद्घाटितम् ।

विदूषक—ज्योंही मैं शीघ्रता से दीपक लिए हुए बाहर हो रहा था, उसी समय सङ्कीर्ण राजमार्ग से अचानक आया हुआ वायु खुले हुए पार्श्व द्वार में एकत्रित हो गया और उसने दीप को बुझा दिया ।

नायक—मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है ।

विदूषक—सचमुच मैं, मेरा बहुत थोड़ा अपराध है । रदनिके ! चलो, चौराहे पर मेरी प्रतीक्षा करना । तब तक मैं भी दीप लेकर आता हूँ । ( निकल जाता है । )

चेटी ( रदनिका )—आर्य, ऐसा ही हो । ( धूमती है । )

गणिका—सौभाग्य से मेरे प्रवेश के निमित्त चारुदत्त के घर का पार्श्वद्वार खोल दिया गया । चरित्र का भय करना अनुपयुक्त है । ( अर्थात् ऐसी परिस्थिति में चरित्र का भय करने से कार्य नहीं चलेगा । ) तब तक प्रवेश करती हूँ । ( भीतर प्रवेश कर बैठ जाती है । ) -



विट—( विलोक्यान्मगतम् ) भवनाभिर्गत्य काचिद्वियमागच्छति ।  
भवतु, अनया धराक वञ्चयामि । ( प्रकाशम् ) सुरभिस्नानधूपानुविद्ध  
इय गंध ।

शकार—आम भावे । गुणामि गंध शनयोह । अधभालपूलि  
नेट्टि पाशापुडट्टि गुट्टु ण पेक्खामि । [ आम भाव ! शृणोमि गंध  
धवणाभ्याम् । अधकारपुरिताभ्या नासापुटाभ्यां सुष्टु न पर्यामि । ]

विट—तिष्ठ तिष्ठ । क यास्यसि । ( चनी गृह्णाति । )

( चदी समय भूमौ पतिता । )

शकार—गण्ह भाव । गण्ह । [ गृहाण भाव ! गृहाण । ]

विट—

एषा हि धयसो दर्पात् कुलपुत्राधमानिनी ।

धराकम् = इतमागमम् ( शकारम् इति शेष ) । सुरभिस्नानधूपानुविद्ध—  
स्नानस्य धूप = गात्रानुलेपनद्रव्यविशेष इति स्नानधूप सुरभि स्नानधूप  
इत्येतेन अनुविद्ध इव गंध इति भाव ।

अधकारपुरिताभ्याम्—अधकारण पुरिते ताभ्याम् ( नासापुटाभ्याम्  
इति भाव ) ।

एषा इति—धयस = यौवनस्य दर्पात् = अभिमानान् ( हेतो ) कुलपुत्रा  
धमानिनी—कुलपुत्राणाम् = अस्मद्विधानां कुलपुत्राणाम् अधमानिनी = अधमानकारि

विट—( द्वेषकर अपने आप ) भवन से निकलकर वह कोई जा रही है ।  
अच्छा मैं इसी के द्वारा ( शकार को ) छुड़वा । ( प्रकाश रूप से ) सुरभिस्त  
स्नान द्रव्य से व्याप्त वह गंध है ।

शकार—हाँ ( विलकुल ठीक ) भाव । मैं कानों के द्वारा गंध सुनता हूँ एवं  
अधकार से परिपूर्ण नासिका के द्वारा छुड़ भी नहीं देर रहा हूँ ।

विट—ठहरो, ठहरो । कहाँ जाओगी ? ( चिटी को पकड़ता है । )

( चिटी मय के कारण भूमि पर गिर पड़ती है । )

शकार—भाव पकड़ो, पकड़ो ।

विट—मैंने पुष्प के विन्यास से भूमि, कौम्य केतों के द्वारा ( इत्ते ) बलात्

केशेषु कु न्यासैः सेवितव्येषु धर्षिता ॥ २२ ॥

शकार—भावे । किं गहीदा । [ भाव । किं गृहीता । ]

बिट—अथ किम् । एषा गन्धानुसारेण गृहीता ।

शकार—दाशीए पुत्तीए शीशं दाव छिन्दिअ पधा मालइशं ।  
[ दास्या पुत्त्या शीर्षं तावच्छित्त्वा पधान्मारयिष्यामि । ]

बिट—गृह्यता तावत् ।

शकार—( चेटीं गृहीत्वा )

पशा द्वि वाशू शिलशि ग्गहीदा केशेषु बालेषु शिलोलुहेषु ।

कूजाहि कन्दाहि लवाहि वात्तं महेशशलं शङ्कलमिशशलं वा ॥ २३ ॥

[ एषा हि वासू शिरसि गृहीता केशेषु बालेषु शिरोरुहेषु ।

णीति भाव अथवा कुलपुत्रम् अवमन्यते या सा इति यावत् । एषा = वसन्त सेनेति भाव , कुसुमन्यासै—कुसुमाना = पुष्पाणा न्यासै = विन्यासै स्थापनैर्वा, सेवितव्येषु = भूपणोपेतेषु केशेषु धर्षिता = बलाद् गृहीता ॥ २२ ॥

शीर्षम् = 'शीर्षस्थकेशम्' इति लक्षणया अर्थो बोद्धव्य इति श्रीकुसुमदर्शन ।

एषा हीति—एषा वासू = बाला शिरसि केशेषु = कचेषु, बालेषु, शिरोरुहेषु इत्यधिक केशापरपर्यायत्वात् तथाहि—'चिकुर कुन्तलो बाल कच केश शिरोरुह' इत्यमर । एवमेवाग्रेऽपि शिवादिपदानामधिकपदत्व ज्ञेयम् । गृहीता ( असि ) साम्प्रतम् शङ्करम् ईश्वर = विष्णु महेश्वर वा आर्तम् = कातरभावेन

पकड़ लिया है, ( क्योंकि ) यह तरुणावस्था के अभिमान से हमारे जैसे कुलपुत्रों को अपमानित कर रही है ॥ २२ ॥

शकार—भाव, क्या वह पकड़ ली गई ?

बिट—और क्या ? यह केशों में लगाए हुए गन्धयुक्त प्रसाधन द्रव्यों के प्रभाव से पकड़ी गई है ।

शकार—सर्वप्रथम इस दासीपुत्री ( दोगली ) का शिर काटूंगा तदनन्तर मारूंगा ।

बिट—तब तक पकड़ो ।

शकार—मैंने इस बाला को शिर से, केशों से तथा शिर के वालों द्वारा

कूज क्रन्द लप वार्त महेश्वर शङ्करमीश्वर वा ॥ २३ ॥ ]

( चेटी बलादाकर्षति । )

चेटी—किं अव्यमिस्सेहि ववसिद । [ किमार्यमिधैर्व्यवसितम् । ]

शकार—भावे । जाणामि शलयोगेण ण होइ वशञ्चरोणिआ ।

[ भाव । जानामि स्वरयोगेण न भवति वसन्तसेना । ]

बिन्—न मोक्तव्या । वसन्तसेनैवैषा ।

एषा रङ्गप्रवेशेन कलाना चैव शिक्षया ।

स्वरातरेण वक्षा हि व्याहर्तुं तन्न मुच्यताम् ॥ २४ ॥

( प्रविश्य )

विदूषक—( दीप गृहीत्वा ) राअमग्गसङ्किण्णेण सीअसुउमारेण वाणेण

रूप = उक्तदेवमुद्दिश्य विलाप कुरु क्रन्द कूज वा तथापि त्वा गृह्णामि इति भाव ॥

आर्यमिधै = पूज्यवर्गं व्यवसितम् = प्रारभ्यम् ।

शकार इति—एषा = वसन्तसेना रङ्गप्रवेशेन = नाट्यागारप्रवेशेन बहुविध वाचिकाभिनयसम्पादनेन ( हेतुना ) इति यावन् कलाना = विविधगानमङ्गीनां शिक्षया = अभ्यासेन चैव स्वरान्तरेण = मन्त्रस्वरेण व्याहर्तुम् = आच्छादितुमित्यर्थः । वक्षा = चतुरा तस्मात् ( एषा ) न मुच्यताम् त्वया इति शेषः ॥ २४ ॥

पकड़ा है । ( चेटी को छद्म करके ) तुम विलाप करो बिशलाओ वा कातरभाव से शङ्कर ईश्वर वा महेश्वर को बुलाओ; तथापि मैं तुम्हारे केशों को पकड़े रहूँगा ॥

( चेटी की बलपूर्वक खींचना है । )

चेटी—आर्य लोगों के द्वारा यह क्या किया जा रहा है ?

शकार—भाव ! स्वर के योग से ( वाणी से ) मैं समझ रहा हूँ कि यह वसन्त सेना नहीं है ।

बिन्—छोड़ना नहीं । यह वसन्तसेना ही है । क्योंकि यह रंगशाला में नाटकीय दृष्टि से प्रवेश करने के कारण तथा नानाविध धोखा देने की कलाओं के अभ्यास के कारण विभिन्न स्वरों के माध्यम से बोलने में प्रवीण है । अतः इसे छोड़ना नहीं ॥ २४ ॥

( प्रवेश कर )

विदूषक—( दीपक लेकर ) राममार्ग की संकीर्णता के कारण, शीत पृथ

पटे पटे विक्खोहिअमाणजणिततरङ्गतैल्लपुण्णभाअणं दीवं क्हं वि  
रक्खिअ गण्हिअ आअदो म्हि । [ राजमार्गसङ्कीर्णेन शीतसुकुमारेण वातेन  
पटे पटे विक्षोभ्यमाणजनिततरङ्गतैलपूर्णभाजन दीप कयमपि रक्षित्वा गृहीत्वा-  
गतोऽस्मि । ] आलोडितम् १५

चेटी—( शकार पादेन ताडयन्ती रुदित्वा ) अय्य । मेत्तेअ । अय  
परिभवो आडु अवलेवो । [ आर्य ! मैत्रेय ! अय परिभवोऽथवावऽलेप । ]

विदूषक—मा टाव, मा टाव । ( सख्यं विट शकार च दृष्ट्वा शङ्कित-  
स्तिष्ठति । ) [ मा तावद्, मा तावत् । ]

विट—अये आर्यचारुदत्तस्य वयस्यो मैत्रेय' खल्वयम् । नेयमपि  
वसन्तसेना । महाब्राह्मण ! अन्यशङ्कया खल्विदमरमाभिरनुष्ठित, न  
दर्पान् । पश्यतु भवान्, १६५११५१

शीतसुकुमारेण = शीतस्निग्धेन इति भाव । वातेन = वायुना विक्षोभ्यमाण-  
जनिततरङ्गतैलपूर्णभाजनम्—विक्षोभ्यमाणम् = आलोलितम् अत एव जनिततरङ्ग-  
तैलपूर्ण भाजन = तैलाधार यस्य एवभूत दीप गृहीत्वा = आदाय इति भाव ।  
अतएव एतादृश दीपक गृहीत्वा रक्षित्वा च आगमने मे क्षिलम्ब सञ्जात  
इत्यभिप्रायः ।

अवलेप = दर्प ।

महाब्राह्मण ! ब्राह्मणाधम ! 'असिजीवी

सुकुमार वाट के द्वारा पग-पग पर दिलने  
ठठती थी । किसी तरह रच

चेटी - पैर से मारती हुई  
है अथवा का घमण्ड ।

विदूष देखकर शो रे, ऐसा मत  
है । )

विट—आर्य चारुदत्त  
नहीं है । हे न लोको ने न  
किया है, दर्प देखें—

अकामा द्वियतेऽस्माभिः काचित् स्वार्थीनयौधना । धीमते १५५  
सा भ्रष्टा शङ्कया तस्याः प्राप्तेय शीलवञ्चना ॥ २५ ॥ १५५

शकार—अभिहा त्तिदन्शत्थथाहपुत्तरसा चालुत्तवहुअरशा चेडी  
मु अ, ण होह यशञ्चशेणिआ । शाहु, यशञ्चशेणिए । शाहु ! अन्धआल  
फलिअ अन्तला यच्चिने भावे, अहके ण यच्चिने वृत्तकायडशीलए ।  
शौयहा दुक्खडे कडे । [ अभिहा दरिद्रमायवाहपुत्रस्य चारुदत्तवदुकस्य चेटी  
वन्विय न भवति वगन्तमेना । माधु वगन्तमेने । साधु । अंधकार कृन्वाऽन्तरा  
वधितो भाव । अह तावद् वधित कृन्कपन्शीलया । सर्वथा दुष्कर कृतम् । ] १५६

। एक पावम्भैतान् पवित्रानभिवादयन् इति स्मृत्युचदिशा गहितकर्मात्रुविधा  
। न्वा महाभ्राह्मण्येन सम्बोधन परोपजीविन्वादिति हरिदासमहाभाष्या । अपर  
। शून्य तैल तथा मासे वसे ज्यातिपिके द्विन । यात्रायां पथि निद्राया महच्छन्दो  
। शीघ्रत इयुक्तमहच्छन्दप्रयोगाद् महाभ्राह्मणपदस्य नीचापप्रत्यायकत्वम् इति  
चित्त भवति । अयशङ्कया—अयस्य शङ्का = धारणा तथा ।

अकामेति—अकामा=अस्मानुकामरहिता निरभिलषिता इति भाव स्वार्थीन  
। अथना स्वाघान यौवन यस्या गा अर्थान् स्वेच्छानुचरितयौवनव्यवहारा न तु पत्य  
। नान्यभिप्राय । काचिन् = वगन्तमेना नाम्नी रमणी अस्माभि द्वियते = नीयते  
। गाढाधरार ना भ्रष्टा = अश्रया पलायिता च जाता तस्या एव शङ्कया =  
। प्रात्या अथात् इय सा एव इति भ्रमबुद्धयेत्यर्थ । इय रदनिकाप्रदृग्जनिता  
। शीलवञ्चना = शीलस्य स्वभावस्य वञ्चना = स्तलन मदाचारनष्टमम्भाषना प्राप्ता  
( अस्माभिरिति शेष ) ॥ २५ ॥

कृन्कपन्शीलया—कृत् च = माया च कपन् च ते शालम् = स्वभाव यस्या

हम लोग ऐसी स्त्री का पाछा कर रह थे जो हम से प्यार नहीं करती थी और  
जिन अपनी जवानी का अभिमान था। पर वह तो हमारे हाथ से निकल गई उसके  
पाटे में इस यचारी की यहजती हो गई ॥ २५ ॥

शकार—हाय ! यह दरिद्र वगिष्पुत्र चारुदत्त की घटी ह वसन्तसेना नहीं ।  
साधु; वगन्तसेने । साधु ! तुमने ( माया) में अंधकार करके विट को छुड़ा है ।  
कपटशीलवादी; तुमने मुझे 'मी' र्थिचित किया । अतः तुमने सबथा दुष्कर ( अर्थात्  
प्रान्तनीय ) काय किया है ।

पदे पदे विनश्योद्दिग्गमाणजनिगततरङ्गतेरुत्पुण्यमालयं दीवं कर्हं वि  
रमिस्त्रज गणित्जल लालदो गिह् । [ राजभार्गसकीर्णैव शीतसुभारेण वातेन  
पदे पदे निशीभ्रमाणजनिततरङ्गतेरुत्पुण्यमालयं दीपं कथमापे रशित्वा एहीत्वा-  
मतीपरिम । ]

वेनी - ( शकारं पादेन तादृशंती रुदित्वा ) अहम् ! मेत्तेय ! अर्थ  
परिभक्तो आहुः अन्वलेपो । [ आर्थ ! मेनेय ! अर्थ परिभवोऽप्यनान्दम्भः । ]

निष्पन्न-—अहं दाव. भा दाव । ( रसकं वि' शकारं च दृष्ट्वा शक्ति  
रितप्रति । ) [ भा तावद्. भा तावत् । ]

वि०-—अथे आर्थचारुदत्तस्य लक्ष्यो मेनेयः स्वल्पम् । नेयमपि  
वरात्तस्येना । महान्नाम्नाण ! अन्वशङ्कया स्वदिवदमरुमाभिरुत्पितं न  
दुर्पात् । पर्यस्तु भवान्. ॥

शीतसुभारेण - शीतरिमभौत इति भावः । वातेन = वायुना निशीभ्रमाण-  
जनिततरङ्गतेरुत्पुण्यमालयम् निशीभ्रमाणम् = आलोकितम् अत एव जलिततरङ्ग-  
तेरुत्पुण्यं मालयं तैलाधारं मरु एवभूत दीपं एहीत्वा = आदाय इति भावः ।  
अतएव एतादृशं दीपं एहीत्वा रशित्वा च आगमने मे विलम्बः सम्यक्त  
द्वयभिषाजः ।

अन्वलेपा - दर्पः ।

महान्नाम्नाण ' वाङ्मनामम ! ' पशिलीची मशीलीची देवलो भाभनाचनः ।

शुक्रभार वायु के द्वारा पम्पम पर हिलने से तैलपूर्ण धान से तरङ्गलहरियाँ  
उठती थीं । वैसे दीप को दिखी तरह रचाने तथा छेकर के यहाँ लाया है ।

वेनी ( शकार को पैर से मारती हुई रोकर ) आर्थ मेनेय ! यह मेरा व्यपमान  
है अथवा शकार जैसे स्त्रियों का भ्रमणम् ।

त्रि०-—ऐसा मत करो, ऐसा मत करो । ( स्वर्गमुक्त. वि० तथा शकार को  
देखकर शक्ति हो कर जाता है । )

वि०-—अरे ! यह तो आर्थ चारुदत्त के गिन मेनेय है यह भी वरात्तस्येना  
नहीं है । हे महान्नाम्नाण, हम लोगों ने अन्व टी ( वरात्तस्येना ) की शपथ से ऐसा  
बिधा है, दर्प से नहीं । आप देखें—



विदूषक — मा दाव । ण जुत्तमिदं । [ सा तावत् । न युक्तमिदम् । ]

विट — भो महाब्राह्मण ! अयमनुनयसर्वस्वमञ्जलिः ।

विदूषक — भोदु, भोदु ! अणवरद्धो भवं । अणुणीदो अहं एव एत्थ अवरद्धो । [ भवतु, भवतु ! अनपराद्धो भवान् । अनुनीतोऽहमेवात्रापराद्ध । ]

शकार — भावे ! दिढ खु भाआशि तं दलिदशस्थवाहपुत्तं चालुदत्त-  
वहुअ । [ भाव ! दृढ खलु विभेषि त दरिद्रसार्थवाहपुत्र चारुदत्तवदुकम् । ]

विट — सत्यं भीतोऽस्मि ।

शकार — किशश भावे ! किशश । [ कस्माद् भाव ! कस्मात् । ]

विट — तस्य गुणेभ्य । पश्यतु भवान् ,

स मद्धिधानां प्रणयैः कृशीकृतो

न तस्य कश्चिद् विभवैरमण्डितः ।

सा एवभूतया त्वयेति शेष ।

अनुनयस्य = आदरातिशयस्य सर्वस्व = परमप्रधानम् अयम् अञ्जलि प्रणामा-  
ञ्जरिति भाव ।

स इति — स = चारुदत्त मद्धिधानाम् = माहशाना याचकाना प्रणयै =  
प्रार्थनादिभि कृशीकृत = दरिद्रीकृत, क्षीणकोषता नीत इति भाव । तस्य =  
आर्यचारुदत्तस्य विभवै = धनै कश्चित् = सामान्योऽपि न अमण्डित = असत्कृत  
अर्थात् धनवितरणेन सर्व एव सत्कृता इति भाव । तु = किन्तु साम्प्रत स

विदूषक—ऐसा मत कहो । यह असङ्गत है ।

विट—भो महाब्राह्मण, यह मेरी अनुनयरूपी अञ्जलि है ।

विदूषक—अच्छा, अच्छा, आप अपराधी नहीं है । आपसे अकारण अनुनय  
कराने के कारण मैं ही अपराधी हूँ ।

शकार—भाव ! दरिद्र वणिकपुत्र से निश्चय ही आप डर रहे हैं ।

विट—मैं सचमुच में ( उससे ) डरता हूँ ।

शकार—क्यों महाशय, क्यों ( आप उससे डर रहे हैं ? )

विट—उसके गुणों से । आप देखें—

वह मुझ जैसे जनों की याचना के हेतु खीण काय हो गया है । उसके विभव से  
कोई भी व्यक्ति असत्कृत नहीं हुआ ( अर्थात् उसके ऐश्वर्य से सब ही सत्कृत



निदाघसशुष्क इव हृदो महान्

नृणां तु तृष्णामपनीय शुष्यति ॥ २६ ॥

। महाब्राह्मण । अयमथ सायवाहपुत्रस्य न कथयितव्यः ।

( निष्कान्तो विट । )

शकार — मालिश ! बड्डुअ ! मालिश ! भणेहि त वलिदूदशत्थवाह पुत्त चालुदत्तवड्डुअ मम वअणेण—साअशाले शण्ठाणे शवट्ठेण शीशेण अणुअन्दिअ भणादि—णाढअइत्थिआ वशअश्रोणिआ णाम गणिआदारिआ शुवण्णवण्णा दुवेहि अम्मेहि बलक्कारेण णीअमाणा महन्तेण शुवण्णा लङ्कारेण तव गेह पविट्ठा । शा शुवे णिट्ठ्याअइदव्वा । मा दाव तव अ मम अ दालुणो खोहो होदि ति । बड्डुअ ! मालिश ! इद च भणाहि—मा दाशीएपुत्त । पारावदगल्लप्पविट्ठ विअ मूलकन्द शीशकवाल मडम डाइश । मा खु कवाढशम्पुडप्पविट्ठ विअ पक्ककवित्थ शीश दे चुण्णचुण्ण मडमडाइश ति । [ मारिप ! बट्टक ! मारिप ! मण त दरिद्र सार्यवाहपुत्र चारुदत्तबट्टक मम वचनेन—राजरयाल सस्थानक सपट्टन शीर्षेणा ५१/११५२५

चारुदत्त निदाघे = शीष्मतां शुष्क = सशुष्क महान् हृद इव = चलाशयमदृश  
नृणां = याचकवर्गिणाम् ( हृदपत्ते ) पिपासूनां जनानां तृष्णां = धनाभिलाषा  
अल्पानाभिलाषाव अपनीय = दूरीकृत्य शुष्यति = धनाभावमाप्नोति ॥ २६ ॥

पूर्व संतुष्ट हुए ) । प्रीप्सुकाल में सबकी प्यास बुझाने में ही स्वयं सूखे हुए एक महान सरोवर की भांति वह सब ( याचकों ) की तृष्णा को शान्त करके निर्धन हो गया है ॥ २६ ॥

महाब्राह्मण सायवाहपुत्र को यह कथा नहीं कहनी चाहिये । ( विट का निष्क्रमण । )

शकार—मारिप ! बट्टक ! मारिप ! दरिद्र सायवाहपुत्र चारुदत्त को मेरी ओर से कहना कि राजरयाल सस्थानक पगदी धो धे हुए सिर से प्रणाम करके कहता है कि—सुचमकी तरह कण्ठिवाली नदी वेश्यापुत्री वसन्तसेना को हम दोनों छाप धे ओ सहसा बड्डुमूवध सुवर्णालङ्कार के साथ आपके घर में प्रवेश कर गईं । कल प्रात उस घर से निकाल दें । जिससे मेरे और आपके बीच दाह्यतर मनोमालिन्य न हो जाय । बट्टक ! मारिप ! और यह भी कहो कि हे दासापुत्र

नुवन्ध भणति—नाटकस्त्री वसन्तसेना नाम गणिकादारिका सुवर्णवर्णा द्वाभ्या-  
भावाभ्या बलात्कारेण नीयमाना महता सुवर्णालङ्कारेण तव गेहं प्रविष्टा । सा  
श्वो निर्यातयितव्या । मा तावत् तव च मम च दारुण क्षोभो भवतीति ।  
बुदुक ! मारिष ! इदं च भण-मा दास्या पुत्र ! पारावतगलप्रविष्टमिव मूलकन्द  
शीर्षकपाल मडमडायिष्यामि । मा खलु कषाटसम्पुटप्रविष्टमिव पक्ककपित्त शीर्षं  
ते चूर्णचूर्णं मडमडायिष्यामि इति । ]

विदूषक—भो ! तह । ( शकार दीपेनोद्वेजयति । ) [ भो ! तथा । ]

शकार—( सर्वतो विलोक्य ) कहि भावे । गदे भावे । अविहा भावे । ।  
[ क्व भाव । गतो भाव । अविहा भाव । । ]

( निष्क्रान्त शकार । )

विदूषक—किद् देवकय्यं ति तत्तहोदो णिवेदइस्सामो । भोदि !  
अवणीअदु दे हिअअमण्णु । अअ बुत्तन्तो अब्भन्तर ण पेसिदब्बो ।  
[ कृतं देवकार्यमिति तत्रभवतो निवेदयिष्याव । भवति । अपनीयता ते हृदय-  
मन्यु । अय वृत्तान्तोऽभ्यन्तर न प्रेषयितव्य । ]

चेटी—अय्य ! रदणिआ खु अहं । [ आर्य ! रदनिका खल्वहम् । ]

सुवर्णवर्णा—सुवर्णस्य वर्ण इव वर्णं कान्ति आभा वा यस्या सा ।

मैं कपोत के कण्ठ में पड़े हुए मूलकन्द की भाँति तुम्हारे सिर तथा कपाल को  
नहीं फोड़ूँगा, अथवा दरवाजा के मध्य में गिरे हुए पक्के कैथ की तरह  
तुम्हारे सिर को चूर चूर करके नहीं खाऊँगा ।

विदूषक—भो ! ऐसा ही हो । ( शकार को दीप दिखाकर व्याकुल करता है । )

शकार—( चारों ओर देखकर ) महाशय, भाप कहाँ है, भाप कहाँ चले गए,  
हाय महाशय !

( शकार निकल जाता है । )

विदूषक—देव कार्य समाप्त हुआ । यह ( सवाद इसलोग ) सम्माननीय चारु-  
दत्त से निवेदन करेंगे । माननीये, हृदयगत दुःख को दूर कीजिए । मैं भी इस  
वृत्तान्त को अन्तःपुर में नहीं कहूँगा ।

चेटी—आर्य, मैं रदनिका हूँ ।

विदूषक—एहि गच्छामो ! [ एहि गच्छाव । ]

( उभौ परिक्रामत । )

नायक—भद्रे ! कृत्त देवकायम् ।

गणिका—( आत्मगतम् ) परिजणन्ति म सहावेदि । भोदु, रक्खि दम्हि । [ परिजन इति मां शब्दापयति । भवन्तु रक्षितास्मि । ]

नायक—मारुताभिलापी प्रदोष । तद् गृह्यता प्रावारकम् । ५५

गणिका—( प्रावारक गृहीत्वा सहर्षमात्मगतम् ) अणुदासीण जोष्यण से पढवासगन्धो सूएत्ति । अनुदासीन यौवनमस्य पन्वासगन्ध सूचयति । ]

नायक—रत्निके ! प्रवेश्यतामभ्यन्तरचतुशालम् । २१५

गणिका—( आत्मगतम् ) अमाङ्गी अह अन्मन्तरप्पवेसस्स । [ अभागिन्यहमभ्यन्तरप्पवेशस्य । ]

नायक—किमिदानीं न प्रविशसि ।

गणिका—( आत्मगतम् ) इदानीं अह किं भणिसि । [ इदानीमह किं भणिष्यामि । ]

नायक—रत्निके ! किं विलम्बसे ।

प्रावारकम् = उत्तरीयवस्त्रम् दुपट्टा इति लोकाभाषायाम् ।

विदूषक—आओ चलें । ( दोनों घूमते हैं । )

नायक—भद्रे ! क्या आपने देवकृत्य को पूरा कर लिया ?

गणिका—( स्वगत ) मुझे परिचारिका समझकर बुला रहे हैं । जो कुछ हो, मेरी रक्षा हुई है ।

नायक—सभ्या समय ठही हुवा चल् रही है । जतः दुपट्टा ले लो ।

गणिका—( सहर्ष दुपट्टा ग्रहण करके ) इस वस्त्र का सुगन्ध सूचित करता है कि इसका यौवनकाल उदासीन नहीं है ।

नायक—रत्निके इसे ( वस्त्र को ) अ त'पुर के चतु शाला में रख दो ।

गणिका—( स्वगत ) मैं अ त'पुर के प्रवेश के सम्यग्ध में अनधिकारिणी हूँ ।

नायक—क्यों अब भी अन्दर नहीं जा रही हो ?

गणिका—( स्वगत ) मैं इस समय क्या कहूँगी ।

नायक—रत्निके, क्यों विलम्ब कर रही हो ?

( रदनिकाविदूषकावुपसृत्य )

चेटी—भर्तृदारक ! इअं म्हि । [ भर्तृदारक ! इयमस्मि । ]

नायक—इयमिदानीं का ।

अविज्ञातप्रयुक्तेन धर्षिता मम वाससा ।

संवृता शरदध्रेण चन्द्रलेखेव शोभते ॥ २७ ॥

गणिका—( आत्मगतम् ) दीपालोअसूइदरुवो सो एव्व दाणि एसो, जस्स किदे अहं पिस्सासमत्तलक्खिदं सरीर उव्वहामि । [ दीपालोक-सूचितरूप स एवेदानीमेव, यस्य कृतेऽहं निश्वासमात्ररक्षित शरीरमुद्दहामि । ]

विदूषक—भो चारुदत्त ! राअसालो सण्ठाणो सबट्टेण सीसेण अणुवन्दिअ विण्णवेदि-णाडअइत्थिआ वसन्तसेणिआ णाम गणिआदारिआ अम्हेहि बलक्कारेण णीअमाण्णामहन्तेण सुवण्णालङ्कारेण

अविज्ञात इति—अविज्ञातप्रयुक्तेन—न विज्ञातम् इति अविज्ञातम् अविज्ञातेन—अज्ञानेन प्रयुक्तम् = दत्तम् तेन, मम वाससा=बलेण धर्षिता=संयोजिता पीडिता वा इति भाव । शरदध्रेण = शरत्कालीनमेवेन इत्यर्थ । संवृता = सच्छन्ना, आवृता वा चन्द्रलेखा इव शोभते = राजते ॥ २७ ॥

दीपालोकसूचितरूप = दीपस्य आलोक = प्रकाश तेन सूचित तादृश रूपम्—आकृति यस्य स, निश्वासमात्ररक्षितम् = निश्वासमात्रेण धृतम् इति भाव । उद्दहामि = धारयामि ।

( रदनिका और विदूषक समीप जाकर )

चेटी—भर्तृदारक, मैं यहाँ हूँ ।

नायक—इस समय यह ( महिला ) कौन है जिसे मैंने अपनी अज्ञानता के कारण बन्ध दे दिया है । इसे ओढ़कर यह शरत्कालीन मेघ से आच्छन्न चन्द्रमा की रेखा की तरह शोभा पा रही है ॥ २७ ॥

गणिका—( स्वगत ) दीप के प्रकाश से सूचित आकृति वाले यह चारुदत्त ही हैं, जिसके निमित्त केवल मैं श्वासों में जीवित हूँ ।

विदूषक—भो चारुदत्त ! राजश्याल, सस्थानक ( शकार ) सबस्र सिर से बंदना करके आपसे निवेदन करते हैं कि नटी युवती वेश्यापुत्री वसन्तसेना को

तुम्हाण गेह पन्डित्ता । सा सुवे णिय्याअइदव्वत्ति । [ भो चारुदत्त ! राजरयाल सस्थान मपट्टेन शीर्येणानुबन्ध विज्ञापयति—नाटकक्री बसन्तसेना नाम गणिकादारिकास्माभिर्बलात्कारेण नीयमाना महता मुवर्णालङ्कारेण युष्माकं गृहं प्रविष्टा । सा श्वो निर्यातयितव्यति । ]

गणिका—( आत्मगतम् ) ह बलवत्कारेण णीअमाणत्ति ण भणादि । भोदु, अअ पत्तकालो । ( प्रकाशम् ) अय्य । सरणागदम्हि । [ह बलात्कारेण नीयमानेति ननु मणति । भवतु अथ प्राप्तकाल । आर्य ! शरणागतास्मि । ]

नायक—न भेतव्य, न भेतव्यम् । किं यस्सन्तसेनैपा ।

विदूषक—अविहा यस्सन्तसेणा । ( अपवार्य ) भो चारुदत्त ! यस्सन्तसेणा खु इअ, जा भयन्ता कामदेवाणुआणप्पहुदि णअणमत्तसत्थुदा सण्णिहिदमणोभवेण हिअएण उवरहीअदि । ता पेक्खदु इअ । [ अविहा बसन्तसेना । भो चारुदत्त ! बसन्तसेना शरिबय या भवता कामदेवानुयानप्रवृत्ति नयनमात्रसस्तुता सञ्चिहितमनोभवेन हृदयनोदुह्यते । तत् पश्यत्विमाम् । ]

नायक—वयस्य । पश्याम्येना, १६ ( १५ )

नयनमात्रसस्तुता—नयनमात्रेण सस्तुता = परिचिता न तु आलपनसम्भाषणादिनेति भावः सञ्चिहितमनोभवेन—मनसि भव उत्पत्तियस्य स मनोभव = कामः सञ्चिहित = सञ्जात मनोभव यस्य तेन अर्थात् उपचितकामेनेत्यर्थः एवभूतेन ( हृदयनेति भावः ) उदुह्यते = उद्वाहस्वरूपेण धार्यते ।

हमलोग बलात्कार करके लाये थे । यह प्रचुर अलङ्कार के साथ आपके महल में प्रवेश कर गई है । उसे कल प्रातः अपने यहाँ से निकाल दीजिये ।

गणिका—( स्वगत ) अरे ! यह कहता है कि यह बलात्कार से लाई गई है । अच्छा यह समय तो आ ही गया । ( प्रकाशरूप से ) आर्य ! शरणागत हूँ ।

नायक—उरो मत उरो मत । क्या यह बसन्तसेना है ।

विदूषक—हाय यस्सन्तसेना । ( अलग करके ) भो चारुदत्त ! यह बसन्तसेना ही है जिसका आपने कामदेव के उत्सवारम्भ के दिन नयनमात्र से ही परिचय किया था, तथापि आपको प्रीतिपूर्ण हृदय से स्वागत करती है । अतः इसे आप दूरें ।

नायक—मित्र ! मैं इसे देखता हूँ—

यत्र मे पतितः कामः क्षीणे विभवसञ्चये ।

रोषः कुपुरुपस्येव म्वाङ्गेष्वेवावसीदति ॥ २८ ॥

गणिका—अद्विण्णभूमिप्पवेरापधरिसणेण अवरद्धा अहं अत्र्यं सीसेण पसादेमि । [ अदत्तभूमिप्रवेशप्रार्थनेनापराद्धाहमार्थं शीघ्रेण प्रसादगामि । ]

नागक.—यत्नेवमहमपि तावदविज्ञातप्रयुक्तेन प्रेष्यसमुदाचारेण सापराधो भवतीं प्रसादयामि ।

निदपक—भो ! विवहन्ता इव सअट्ठिअं दुब्बिणीदवलीवहा अण्णोण्णं मक्खिलेसन्ति । अहं दाणि क पसादेमि । भोदु, दाणि रदणिअं

यत्रेति—विभवरामने क्षीणे = गिनष्टे सति यत्र = गत्यां ( वरान्त-सेनागाम् ) पतितः = राधात मे = मम कामः = माहानुरागः, सम्भोगपातना या फयुरुपरय = अधभरय, शुभ्ररहितस्य वा रोषः = क्रोध एव स्वांगेषु एव = स्व-शरीरेषु एव अवसीदति = अन्तर्लिनो भवति ननु षट्भिर्भूय मनोरथपूर्णादिना राफलीभपति अर्गात् करणीगशफोरभावाद् यथा गनुगस्य रोषः शत्रूणां कमपि अवकारध करोति अपितु क्रोधकर्तुरेव हामिरिग्यमिप्रानः ॥ २८ ॥

अदत्तभूमिप्रवेशप्रार्थनेन = अदत्तः भूमिप्रवेशः = भूमिप्रवेशानुमति तेन प्रार्थनम् = पीठनम् रोष करणेनेत्यर्थः ।

प्रेष्यसमुदाचारेण—प्रेष्यस्य = शररय समुदाचारः = गोम्यव्यवहार तेन हेतुनेति भावः ।

यद्यपि मेरा वैभव नष्ट हो गया है तथापि इसके ( वसन्तसेना के ) प्रति मेरी कामना ( हृष्ट अनुराग ) बनी हुई है । ( कामना का स्थान हृषय है ) जैसे बलहीन अधम पुरुष का क्रोध उसके शरीर में ही विलीन हो जाता है ॥ २८ ॥

गणिका—मैं गृह-प्रवेष्टा की अनुमति के बिना आपके घर में जबरदस्ती प्रवेश करने के कारण अपराधी हूँ तथा इसके लिये आर्य को मस्तक नचाकर प्रार्थना करती हूँ ।

नागक.—यदि ऐसी बात है तब तो मैं भी भनजाने में आपके साथ भृत्यवत् व्यवहार करने के कारण अपराधी हूँ और इसके लिये आपसे प्रार्थना करता हूँ ।

निदपक—राष्ट्री को क्षीयने में लगे हुए दो दुर्बिनीय पैलों की तरह ये परस्पर एक दूसरे को अनुभव प्रार्थना द्वारा मलेश पट्टा रहे हैं । मे इस समय किसको

पसावेमि । रणिए । पसीददु, पमीन्दु होनी । [ मो । विवहन्ताविव शक्तिं दुर्बिनीतबलीवदावन्योय सफलशायत । अहमिदानीं क प्रमादयामि । भवतु इतानी रदनिका प्रमादयामि । रदनिके । प्रसीदतु प्रसीदतु भवता । ]

नायक—भवति । परवानस्मि । किमनुविद्यति स्नेह ।

अनुविद्यति  
स्नेह

गणिका—( आगतम् ) मधुरं नु इच्छिष्यन्व । अवकिरणं सु पदम हसणे जहच्छागदाए इह वसिदु । ता एव करिस्स । ( प्रकाशम् ) जह मे अप्यो पसणो, अर्थ मे अलङ्कारो इह एव चिदु । अलङ्कारनिमित्त पावा म अणुसरन्ति । अह पि अद्येण रकिणदा गेह गन्तुमिच्छामि । [ मधुरं खल्वेष्ट्यम् । अदक्षिणं सन्तु प्रथमदर्शने यच्छागतयह वस्तुम् । तन्नेव करिष्यामि । यदि म आयं प्रसन्नं अयं मलङ्कार इहैव तिष्ठतु । अलङ्कारनिमित्त पावा मामनुसरन्ति । अहमप्यार्येण रक्षिता गेह गन्तुमिच्छामि । ]

परवान् = अह त्वदिपयकानुगणन तथाधीन अस्मीति भाष्य अत मदीयस्नेह = अनुराग किमनुविद्यति = किम् तव विधास्यतीति त्वमेव वने त्यमिप्राय ।

मधुरम् वस्तुवासनाभिन्नरूपम् एष्ट्यम् अपिपु योम्य = प्रार्थनयोम्य मधुना । किन्तु प्रथमदर्शने तत्काले यच्छागतया अन्विक्रमोपस्थितया मया इह चारुदत्तपदे वस्तुम् स्यात्तुम् अदक्षिणम् अयोम्य स्यात् तदा अपराधो भवे दिति श्री कुमुदरजनमहोपा । पावा = पुष्टा इत्यथ ।

प्रसन्न करु ? अच्छा इस समय रदनिका को मनाता हूँ । अथ रदनिके ! तुम प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ ।

नायक—माननीये म ( आपके प्रति प्रेम के कारण ) पराधीन हूँ । अतः यह मेरा स्नेह आपको क्या देगा ?

गणिका—( स्वगत ) मधुर वस्तु प्राप्त करने योग्य समय है । किन्तु एक बार देख लेने पर ही त्यक्तया यहाँ आकर रहना अनुचित है । तब देना करूँगी । ( प्रकाश ) यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तब व अलङ्कार यहीं रहें । अलङ्कार के निमित्त पापीजन ( बिल पर्यं सकार ) मरा पीछा कर रहे हैं और म भी आपके द्वारा रक्षित होकर पर जाना चाहती हूँ ।

नायक —अन्वर्थमुपदिशति । मैत्रेय ! गृह्यताम् ।

विदूषक —ण मे सद्धा । [ न मे श्रद्धा । ]

नायक —मूर्ख ! गृह्यताम् ।

विदूषक —ज भवं आणवेदि । आणेदु भोदी । [ यद् भवानाज्ञापयति ।  
आनयतु भवती । ]

( गणिका विमुच्यालङ्कार प्रयच्छति । )

विदूषक —( रहीत्वा ) रदणिए ! गह एद सुवण्णालङ्कारं तुवं ।  
सट्ठीए सत्तमीए अ धारेहि । अहं अट्टमीए अणद्धाए धारइस्सं ।  
[ रदनिके ! गृहाणैत सुवर्णालङ्कार त्वम् । षष्ठ्या सप्तम्या च धारय । अहमष्टम्या-  
मनध्याये धारयिष्यामि । ]

चेटी—( विहस्य ) सत्थं वक्खाणअन्तस्स भट्ठिपुत्तस्स तदाणि  
अवसरो होदि । आणेदु अय्यो । ( रहीत्वा निष्क्रान्ता । )

[ शास्त्र व्याचक्षाणस्य भर्तृपुत्रस्य तदानीमवसरो भवति । आनयत्वार्थं । ]

नायक —कोऽत्र भो । दीपिका तावत् ।

विदूषक —भोः ! दीविआ गणिका विअ णिस्सिणेहा संवुत्ता ।  
[ भो ! दीपिका गणिकेव नि स्नेहा सट्ठा । ]

अन्वर्थम् = प्रयोजनमिति भावः ।

नि स्नेहा—( दीपिकापक्षे ) निर्गत स्नेह ( तैलम् ) यस्या सा, ( गणिका-

नायक—उचित कह रही हैं । मैत्रेय, इसे ले लो ।

विदूषक—मेरी श्रद्धा नहीं है ।

नायक—मूर्ख ! ( क्रोध के साथ ) ग्रहण करो ।

विदूषक—जो आपकी आज्ञा । महाशया लाइये ।

( गणिका अलङ्कार को उतार कर देती है )

विदूषक—( ग्रहण करके ) रदनिके, तुम इस सुवर्णालङ्कार को रखो । षष्ठी और  
सप्तमी को धारण करना । मैं अष्टमी तिथि को अनध्याय होने पर धारण करूंगा ।

चेटी—( हंसकर ) शास्त्रों के व्याख्यान में व्यस्त आपको उसी दिन अवसर  
मिलता है । आर्य, लाइये । ( ग्रहण करके निकल जाती है । )

नायक—अरे ! यहाँ कौन है ? दीप लाओ ।

विदूषक—यह दीपक गणिका की भाँति निःस्नेह ( तैलहीन और प्रेमहीन )  
हो गया है ।



नायक—कृत दीपिकया । ( विलोक्य ) उदितो भगवान् सर्वजन  
सामान्यप्रदीपञ्चन्द्र । अत खलु,

उदयति हि शशाङ्कः क्लिन्नज्वरपाण्डु-

अर्ध

एवम्  
(२५३)

युवतिजनसहायो राजमागप्रदाप ।

तिमिरनिचयमध्ये रश्मयो यस्य गौरा

हृतजल इव पङ्के क्षीरधारा पतन्ति ॥ २९ ॥

पत्ने) निर्गत स्नेह = अनुराग यस्या सा सृष्टा = सजाता (दीपिकेति भाव) ।

कृतम् = व्यर्थ पर्याप्तमिति यावत् युगपर्याप्तयो कृतम् इत्यमर दीपकस्य  
तैलमात्रकृत प्रज्वालनायोग्यत्व वसन्तसेनामविक्रमुत्थावदत्त अधुना प्रकृतिनिर्मित  
स्वत मिदप्रकाशमयच शकिरणैरेव कार्यस्य सम्पादनीयत्व वक्ति ।

उदयतीति—हि=यत् क्लिन्नज्वरपाण्डु—क्लिन्नः=क्लेदयुक्त खर्पूर ।  
तादृक्कलविशेष तादृक् पाण्डु = रवेत् हरिण पाण्डुर पाण्डु इत्यमर समु  
ज्ज्वल इत्यथ युवतिजनसहाय = अभिसारविषय युवतिजनानाम् सहाय =  
पथप्रदर्शक राजमागस्य प्रदीप = प्रकाशक शशाङ्क = चन्द्र उदयति =  
आकाशमुद्गच्छति । तिमिरनिचयमध्य—तिमिराणाम् = अन्धकाराणां निचय =  
ममूह तस्य मध्ये यस्य चन्द्रस्य गौरा = शुभ्रवर्णा गौर पीतेऽरण्ये रवेते  
विशुद्धे चाभिधेयवत् इति मेदिनी रश्मयः = किरणा किरणोत्समयूक्षाशुग  
भस्तिपृणिरश्मय इत्यमर । हृतजले—हृत निगत वा जल यस्मात् यस्य वा

नायक—दीप की कोई आवश्यकता नहीं है । ( देखकर ) सबके लिये सामान्य  
प्रदीप स्वरूप भगवान् चन्द्रमा का उदय हो गया है । इसी लिए यह ऐसा  
कहा जाता है—

आर्द्र रश्मि की तरह शुभ्र युवतिजन के ( अभिभरणकाल में ) सहायक  
राजमाग का प्रदीप चन्द्रमा उदय हो रहा है तिमिरी शुभ्र रश्मियां अन्धकार में  
जलमय पङ्क में दूध की धारा की तरह गिर रही है ( अर्थात् गाढ अन्धकार में  
शुभ्र चन्द्रमा की किरणों काले रङ्ग के पङ्क में दूध की धारा की तरह प्रतीत हो  
रही है । ) ॥ २९ ॥

भवति ! राजमार्गं निष्क्रमणं क्रियताम् । सखे ! अनुगच्छात्र  
भवतीम् ।

विदूषक — जं भवं आणवेदि । एदु एदु भोदी । [ यद् भवानाज्ञापयति ।  
एत्वेतु भवती । ]

( निष्क्रान्ता सखे । )

प्रथमोऽङ्कः ।

तादृशे पदके = रूढमे 'पद्मोऽस्त्री शादकर्दमी' इत्यमर, क्षीरधारा इव = दुग्धधारा  
इव पतन्ति । अयमत्राशय — धनान्धकारे शुभ्रा चन्द्रकिरणा कृष्णवर्णपद्ममध्ये  
दुग्धधारा इव प्रतीयन्ते ॥ २९ ॥

इति प्रथम अङ्क - अङ्कघटे वर्णयते लीरुत्तरितम् एव रूप अङ्क समाप्त इति ।

प्रथमोऽङ्क समाप्त ।

आप राजमार्ग पर चलें । मित्र आपके पीछे-पीछे ( साथ ) जाओ ।

विदूषक — जो आपकी आज्ञा । माननीया इधर से आइये । ( सचके सच निकल  
आते हैं ) ।

॥ प्रथम अङ्क समाप्त ॥

## अथ द्वितीयोऽङ्कः

( ततः प्रविशति गणिका चेटी च । )

गणिका—तदो तनो । [ ततस्ततः । ]

चेटी—अम्महे ण किञ्चि मए भणित् । किं तदो तदो ति । [ अम्मह  
न किञ्चि मया भणितम् । किं ततस्तत इति । ]

गणिका—हञ्जे ! किं मए मत्तिद । [ हञ्जे ! किं मया मत्त्रितम् । ]

चेटी—अज्जुए । सिणोदो पुच्छदि, ण पु'रोभाइत्ता । किं चिन्ती  
इति । [ अज्जुके ! स्नेहं पृच्छति न पुरोभागिता । किं चिन्त्यते । ] <sup>आँ ई <sup>चम</sup></sup>

गणिका—हञ्जे । तुम दाय किं ति तक्केसि । [ हञ्जे ! त्व तावन्  
किमिति तन्यसि । ]

किं ततस्तत = न मया किञ्चित् उक्तम् । तथापि क्व भीमती तत किं  
'भूतम्' इति केन हतुना ब्रूते इति भावः ।

हण्ड हञ्जे हला हान नीचां चटीं मरीं प्रतीत्यमरवचनान् हञ्जे । इति  
इति चर्त्नी प्रति सम्बोधनम् । मत्त्रितम् = भणितम् ।

अज्जुके ! इति सम्बोधनपदम् गणिके । इत्यर्थे प्रयुक्तं यथोक्तम् अमर  
शोधे—'नाट्योक्तौ गणिकाऽज्जुका इति । स्नेहं पृच्छति=त्वां प्रति मदीयं स्नेहं  
पृच्छति अर्थात् मां कथयितुं प्रेरयति न मे पुरोभागिता = अथगुणैकदर्शिता  
शौद्रस्य वा दीपकदकं पुरोभागी इत्यमरः ।

( इतके बाद गणिका भो( चेटी का प्रवेश )

गणिका—तय फिर क्या हुआ ?

चेटी—मैंन कुछ भी नहीं कहा तब आप क्यों पृच्छ रही हो कि तब फिर  
क्या हुआ ?

गणिका—प्रिय दामी मने क्या कहा ?

चेटी—माननीय ! आपके प्रति जो मेरा स्नेह है यही पृच्छने को बाध्य कर  
रहा है न कि उद्दण्डता । आप क्या साच रही हैं ?

गणिका—प्रियदासी ! ( इस विषय में ) तुम क्या अनुमान कर रही हो ?

१ पुरोभाग्दाय ।

चेटी—अप्यओअणदाए गणिआभावस्स अज्जुआ क पि कामेदि ति तक्क्रेमि । [अप्रयोजनतया गणिकाभावस्याज्जुका कमपि कामयत इति तर्क्यामि ।]

गणिका—सुट्ठु तुए किद् । अवञ्चिदा दे दिट्ठी । ईदिसवण्णय्येव । [ सुट्ठु त्वया कृतम् । अवञ्चिता ते दृष्टि । ईदशवर्णैव । ] ६६१/५

चेटी—अणलकिद् पि अज्जुअ मण्डिदं विअ पेक्खामि । कामो हि भअवं अणवगीदो ऊसुवो तरुणजणस्स । [ अनलङ्कृतामप्यज्जुका मण्डितामिव पश्यामि । कामो हि भगवाननवगीत उत्सवस्तरुणजनस्य । ] ६०५/१५

गणिका—हदासे । उक्कण्ठिदन्वे का दे रदी । [ हताशे ! उत्कण्ठितव्ये का ते रति । ]

गणिकाभावस्य—गणिकाया = वैश्याया भावस्य धनोपार्जनवृत्ते त्वद्विषये अप्रयोजनतया = प्रयोजनाभावात्, 'अतः' इव, धनाढ्या एव अर्थात् धारागता सम्बन्धे यत् प्रयोजनम् धनोपार्जनलक्षणं भवति तस्य अनावश्यकत्वात् अह अनुमिनोमि यत् श्रीमती कमपि प्रियजनम् अभिलषति इति आशयः ।

कृतम् = तर्कितम्, आलोचितम् वा, ईदशवर्णा—ईदशो वर्णं स्वरूप यस्या सा एवभूता अहम् अस्मि इत्यर्थः ।

अनवगीत—न अवगीत इति अनवगीत = अनिन्दित, काम = काम-देव, उत्सव = शोभादायकः ।

उत्कण्ठितव्ये = प्राप्तव्ये इष्टवस्तुनि अप्राप्ते ते का रति = सतोऽपि प्राप्ते हि तस्मिन् स युक्त इत्यभिप्राय इति गनपतिशास्त्री ।

१ चेटी—जब आपको गणिकावृत्ति ( धनोपार्जन वृत्ति ) की आवश्यकता नहीं है तब मैं कहना करती हूँ कि आप किसी 'प्रेमी' को चाहती है ।

गणिका—तुमने अच्छा अनुमान किया । तुम्हारी दृष्टि अच्छी है । मेरी अवस्था सबमुच प्रेमी ही है ।

चेटी—यद्यपि आप अलङ्कार से रहित हैं, फिर भी मैं आपको समज्जित एव अलङ्कृत ( नारी ) की भांति देख रही हूँ । भगवान् कामदेव तरुणजन के उत्सव स्वरूप एवं शोभादायक ( आनन्दस्वरूप ) हैं ।

गणिका—हाय रे ! आशङ्कित एव अभीष्ट वस्तु की अनुपलब्धि के पहले ही ( तुमको ) आनन्द कैसे हो सकता है ?

चेटी—अज्जुए ! इच्छामि पुच्छिद्धु बहुमाणो विअ रमणीओ कोच्चि राजकुमारो । [ अज्जुके । इच्छामि प्रष्टु बहुमान इव रमणीय कखिद् राजकुमार । ]

गणिका—रमिद्धु इच्छामि, ण सेविद्धु । [ रतुमिच्छामि न सेवतुम् । ]

चेटी—किण्णु खु विजाविसेसरमणीओ कोच्चि बग्गणदारओ । [ किन्नु खलु विद्याविशेषरमणीय कखिद् ब्राह्मणदारक । ]

गणिका—अत्थि अदिबहुमतो विस्सम्भो । पूजणीओ खु सो जणो । [ अस्त्यतिबहुमतो विधम्म । पूजनीय खलु स जन । ]

चेटी—किण्णु हु वणिजदारओ कोच्चि आगन्तुओ । [ किन्नु खलु वणिग्दारकः कखिदागन्तुक । ]

विद्याविशेषरमणीय — विद्याया विशेषेण रमणीय गुणवान् एवभूत कखित् ब्राह्मणदारक = ब्राह्मणपुत्र कामयते किम् ?

अतिबहुमत = मम ब्राह्मणपुत्रे बहुसमादरयुक्त विस्सम्भ = प्रणय अस्ति ।  
खलु = निश्चयेन स जन पूजनीय = भोजनवस्त्रादिदानसम्मानाभ्यामहणीय  
अत एव पूजार्ह न खलु रमणाह । अपर च पूजनीया विलासवैमुख्य भजते इत्यभिप्राय ।

कखित् आगन्तुक = वैदेशिक वणिग्दारक = वणिक्पुत्र कामयते किम् ।

चेटी—माननीये ! मै यह पूछना चाहती हूँ कि क्या भाव रमणीय एवं बहु मानित किसी राजकुमार को चाहती हूँ ?

गणिका—म किसी सुन्दर सुकुमार की सेवा करना नहीं चाहती बल्कि प्रेमी के साथ रमण करना चाहती हूँ ।

चेटी—क्या विद्या विशेष से रमणीय ( गुणी ) किसी ब्राह्मण कुमार को तो नहीं चाहती ?

गणिका—( मेरा ब्राह्मण पुत्र में ) बहुत क्या अनुराग है, परन्तु वह पूता के योग्य है ( अर्थात् उपभोग एवं आनन्द के योग्य नहीं है ) ।

चेटी—तब क्या कोई आगन्तुक ( वैदेशिक ) वणिक्पुत्र को चाहती हूँ ?

गणिका—उन्मत्तिए ! आशाच्छेदं उक्कण्ठन्ता का सहेदि । [ उन्मत्तिके ! आशाच्छेदमुत्कण्ठमाना का सहते । ]

चेटी—किं ण सक्क सोदुं । को अम्हाणं मणोरहाउत्तो । [ किं शक्य श्रोतुम् । कोऽस्माक मनोरथावुत्त ! ] 'मानी ५४'.

गणिका—कि तुव कामदेवाणुयाणे ण आअदा सि । [ कि त्व काम देवानुयाने नागतासि । ]

चेटी—ण आअदम्हि । [ नन्वागतास्मि । ]

गणिका—केण उदासीण मन्तेसि । [ केनोदासीन मन्त्रयसे । ]

चेटी—भणादु, भणादु अज्जुआ, भणादु । [ भणतु, भणत्वज्जुआ भणतु । ]

गणिका—हञ्जे ! सुणाहि दाव । अत्थि सत्थवाहपुत्तो चारुदत्तो णाम । [ हञ्जे ! शृणु तावत् । अस्ति सार्धवाहपुत्रश्चारुदत्तो नाम । ]

उत्कण्ठमाना—अभीष्ट कामयमाना, भोगकामा वा का नाम स्त्री वैदेशिके प्रीति सत्याप्य वैदेशिकस्य अन्यत्र गमनात् आशाच्छेदम् = आशाभङ्ग सहते, न क्वचिदपि तत् सहते इत्यर्थः । अतस्ते मम अभीष्टविषये तादृश वणिक्पुत्रस्य अनुमानचित्तविभ्रमप्रसूतम् एव, तस्मात् त्वम् उन्मत्तिका अस्ति ।

मनोरथावुत्त —मनोरथस्य आवुत्त = भगिनीपति ।

कामदेवानुयाने—कामदेवस्य अनुयाने = उत्सवे समागमे वा ।

गणिका—उन्मत्तिके ! क्या उत्कण्ठित एव भोग की कामना करनेवाली कोई नारी वैदेशिक से प्रीति करके ( उसके अन्यत्र चले जाने के कारण ) आशाभंग को सहन कर सकती है ? अर्थात् कोई नहीं सहन कर सकती ।

चेटी—क्या मैं नहीं सुन सकती कि कौन हमारे जीजा साहब हैं ।

गणिका—क्या तुम कामदेव के उत्सव में नहीं आई थी ?

चेटी—हाँ, मैं आई थी ।

गणिका—क्यों उदासीन होकर बोलती हो ?

चेटी—आप कह लीजिए ।

गणिका—अरी ! त्वं तुम सुनो । वणिक्पुत्र चारुदत्त है ।

चेटी—जेण सरणागता तुय रक्खिउदा । [ यन शरणागता त्व रक्षिता । ]

गणिका—सो एव्व । [ स एव । ]

चटी—हद्धि, दरिहो कखु सो । [ हा धिक् दरिद ख्लु स । ]

गणिका—अवो कखु कामीअदि । अदिदरिदपुरुससत्ता गणिआ अवअणीआ होइ । [ अत ख्लु काम्यते । अतिदरिदपुरुपसका गणिका अवचनीया भवति । ] ३५११११११

चटी—अज्जुए । उद्धूदपुप्फ सहआर महुअरा उयासन्ति । [ अण्जुके । उद्धूतपुप्फ सहकार मधुकरा उपासते । ] ३५११११११११

गणिका—हज्जे । एव, उयासन्ति । दे महुअरा त्ति पुच्छीअन्ति । [ इज । एवम् उपासते । ते मधुकरा इति पृच्छयते । ] ३५११११११११

अवचनीया—न वचनीया अवचनीया = अनि-दनीया इत्यर्थ ।

उद्धूतपुपम्—उद्धूतानि = उद्रतानि पुष्पाणि यस्य तत् एवभूतम् सहकारम् = आमृतक्षम् रसाल वा मधुकरा = मधुग्रहणशीला भ्रमरा ( मधुहरा ) उपासते । लोकेऽपि मधुवत् धनरता गणिका अस्ति इति श्याति । करोतेरने कायत्वात् अत्र ग्रहणार्थे हरणार्थे वा व्यवहियते ।

अत्र वसन्तसेना, स्वनीयदास्या वचनस्य प्रतिवाद इव-त्याह—एवमिति । अत एव ते = एवमुपासीना भ्रमरा-मधुकरा मधुग्रहणशीला इति पृच्छयन्ते = उपालभ्यन्ते इति भावः ।

चेटी—जिसने आपकी रक्षा की थी ।

गणिका—वही ।

चेटी—हा धिक् ! यास्तव में वह दरिद्र है ।

गणिका—हसीलिये तो उसे चाहती है । अति दरिद्र पुरुष में आसक्त परया किसी स वचनीया नहीं होती ।

चेटी—माननीये ! जिसमें मधुरी निकल आई हो उसी आमपूच की उपासना मधुकर किया करते हैं ।

गणिका—सरि । ये पूछते हैं इसीलिये तो ( लोग ) उनको मधुकर ( मधुहारक वा धनहारक ) पैसा सहकर उपालम्भ दते हैं ।

चेटी—किं, विभवमन्ददाए वेसवासप्पसङ्गकादरो दुक्खं त्ति जइ ण आअच्छे । [ किं, विभवमन्दतया वेशवासप्रसङ्गकादरो दुक्खमिति यदि नागच्छेत् । ]

गणिका—णं अहं त कामेमि । [ नन्वह त कामये । ]

चेटी—जइ एत्तओ बहुमाणो, कि णाभिसरीअदि । [ यवेतावान् बहुमान, किं नाभिस्रियते । ]

गणिका—ण हु ण गच्छामि । किन्तु सहसा अंभिसरिदो पच्चुअ आरदुल्लभदाए पुणो मे दुल्लभो भवे त्ति विलम्बेमि । [ न खलु न गच्छामि । किन्तु सहसामिच्छत प्रत्युपकारदुर्लभतया पुनर्मे दुर्लभो भवेदिति विलम्बे । ]

विभवमन्दतया—विभवस्य = ऐश्वर्यस्य मन्दता = क्षीणता इति विभवमन्दता तया । वेश (=वेश्याजनसमाश्रय) वेशे वास, तस्य प्रसङ्ग = प्रसक्तिः, आसक्ति वा तस्मिन् कातर (स चारुदत्त), एतादृश चारुदत्त वेशवास दुक्खम् = दुःखजनकम् इति मत्वा यदि नागच्छेत् तदा किं करिष्यामि इति आशयः ।

तदा विभवक्षीणतादुःखस्य स यथा विषयो न भवेत् तथा करिष्यामि, त कामयमाना च तादृशम् आचरेयम् अत आह—'नन्वह त कामये' इति ।

अभिस्रियते = स किं न अभिस्रियते त्वया इति शेषः ।

न खलु न गच्छामि—अहं न खलु गच्छामि इति न, अपि तु गच्छाम्येव । किन्तु सहसा = हठात् इदानीमेव अभिच्छत सन् प्रत्युपकारदुर्लभतया—प्रत्युपकारे दुर्लभ = असमर्थ चारुदत्त तद्भावतया, 'अहं प्रत्युपकारुं न समर्थोऽस्मि' इति

चेटी—यदि वेश्याजन में अनुराग होने से कातर (चारुदत्त) वैभव के विनाश के कारण यहाँ वेशवास में (=वेश्यागृह में) न आये, तब आप क्या करेंगी ?

गणिका—मैं तो वास्तव में उसे ही चाहती हूँ ।

चेटी—यदि उसके प्रति आपका बड़ा आकर्षण एवं समादर है तो क्यों नहीं आप स्वयं चली जातीं ?

गणिका—मैं अवश्य जाऊंगी । किन्तु इस समय मेरा सहसा अभिसरण पाद में उसे अनुपयोगी (दुर्लभ) घना देगा, क्योंकि वह इस समय प्रत्युपकार करने में असमर्थ है । इसीलिये, मैं विलम्ब कर रही हूँ ।



चेगी—ह, किं एतच्छिष्यमिच्छ तद्धि एव्व सो अलङ्कारो ठाविदो । [ ह निमित्तमिच्छित्त तत्रैवं सोऽलङ्कार स्थापितः । ]

गणिका—ईदिस एव्व । [ ईदृशमेव । ]

( तत प्रविशत्यपटीक्षेपेण सवाहकः । )

सवाहक—अट्ये ! सरणागदो म्हि । [ आर्ये ! शरणागतोऽस्मि । ]

गणिका—अल अट्यस्स सम्भमेण । [ अलमार्यस्य सम्भ्रमेण । ]

हेतोः स पुन मे = मम सम्बन्धे दुर्लभ = अप्राप्य भवेत् यदि अर्थात् मम मभीष नागच्छेत् इति हेतो अहम् इदानीं विलम्ब = विलम्ब करोमि इत्ययम् ।

अपटीक्षेपेण—पठ्या पठस्य वा = ज्वनिकाया क्षेप = निरसनम् इति पटीक्षेप ज्वनिकापरमाणुम्, न पटीक्षेप तेन, ज्वनिकामनपसार्य एव प्रविशति सवाहक = कथित अहमर्दनकलाजीवी इत्यर्थः । अत्र पटीक्षेपो न कर्तव्य धर्त राजप्रवेशने इति नियमबलात् धर्तस्य भयात्स्य वा सवाहकस्य अपटीक्षेपेण प्रवेशो न असङ्गतः ।

नाम इति प्राकारय वा सम्भावनायामभ्ययम् माहसेन चरतीति साहमिकः ।  
मुलभचारित्रवचना-चारित्रमेव चारित्रम् चारित्रस्य वचनम् = अत्र मुलभ चारित्रवचन ययाम् ते तथा । अपराधयितुम्—अपराध वनुमित्ययम् ।

अभिजनेन—जन्मना गणिका न तु शीलेन = चारित्र्य इत्याशयः ।  
सवाहक इति—धनिजात् = धनिरो द्यूतविजयो अतः तत् सवाशात् मम मयम् अस्ति इति भाषः ।

अयस्य इत्यत्र सम्बन्धनिवर्तय्या पटी वस्तुस्तु चतुर्थी एव उपबुधा ।

चेगी—हाँ क्या हमी उद्देश्य से आप अपने अलङ्कारों का उनके ( वाददत्त के ) पाम रख आई हैं ?

गणिका—सखमुच यही बात है ।

( तव प ई के दिना गिरावे ही संवाहक ( पैट दशनेवाल ) वा प्रवेश )

संवाहक—आय ! मैं शरणागत हूँ ।

गणिका—आपको क्याकुछ हाने की आपरवकता नहीं है ।

१ भीष गणपति शास्त्री द्वारा मर्यादा प्रन्थ मे अपराधरय वद् वाठ विलग ह ।

चेटी—ह, को दाणि एसो । [ ह क इदानीमेषः । ]

गणिका—उम्मत्तिए ! किं सरणाअदो पुच्छीअदि । [ उम्मत्तिके । किं शरणागत पृच्छयते । ]

चेटी—अवि णाम साहसिओ भवे । [ अपि नाम साहसिको भवेत् । ]

गणिका—उम्मत्तिए ! गुणवन्तो रक्खिदव्वो होदि । [ उम्मत्तिके । गुणवान् रक्षितव्यो भवति । ]

सवाहक—अय्ये ! ण भएण उवआरो विस्सरिदो, ण परिभवेण । पेक्खदु अय्या, भीदाहवा पधरिसिदाहवा आवण्णाहवा सुलभचारिस्सवञ्जणाहवा अवराहेदुं समत्था होन्ति । [ आर्ये ! ननु भयेनोपचारो वेस्मृत, न परिभवेन । पश्यत्वार्या, भीता अथवा प्रधर्षिता अथवा आपन्नं अथवा सुलभचारित्रवञ्चना वा अपराधयितु समर्था भवन्ति । ]

गणिका—भोदुं, भोदु । विस्सत्थो भोदु अय्यो । गणिआ क्खु अहं । भवतु, भवतु । विश्वस्तो भवत्वार्य । गणिका खत्वहम् । ]

सवाहक—अभिजणेण, ण सीलेण । [ अभिजनेन, न शीलेन । ]

गणिका—हञ्जे । एव विअ । [ हञ्जे । एवमिदं । ]

चेटी—अज्जुआ अय्य पुच्छदि, कुदो अय्यस्स भअं ति । [ अज्जुका आर्यं पृच्छति, कुत आर्यस्य भयमिति । ]

चेटी—हाँ, यह कौन है ?

गणिका—उम्मत्तिके ! शरणागत के विषय में क्या पूछती हो ?

चेटी—हो सकता है कोई साहसी ( अपराधी ) हो ।

गणिका—उम्मत्तिके ! गुणवान् की रक्षा होनी चाहिये ।

सवाहक—मैं सचमुच में भय के कारण उपचार ( भद्रता ) भूल ही गया था, न कि अपमान से । महाशया देखें—भयभीत, तिरस्कृत, विषद्वेषस्त तथा चरित्र-अष्ट ( जन ) क्षिप्रता के व्यवहार में अपराध कर जाता है ।

गणिका—अच्छा, अच्छा । आर्ये आश्वस्त हों । मैं वास्तव में गणिका हूँ । अतएव यहाँ क्षिप्रता के अंश को लेकर कुछ भी नहीं कहूँगी ।

सवाहक—आप जन्म से 'गणिका' हैं व्यवहार से नहीं ।

गणिका—भरी ! यह ऐसा ही है ।

चेटी—माननीया आपसे पूछ रही हूँ कि, आपको किसका भय है ?

सबाहक—अप्ये ! घणिकादो । [ आर्ये ! धनिकात् ]

गणिका—जइ एव, आसण देहु अय्यस्स । [ यथेवम् आसन दीय  
तामायस्य । ]

चेटी—तह । ( आसन ददाति । ) [ तथा । ]

गणिका—उवविसदु अय्यो । [ उपविशत्वार्य । ]

सबाहक—( स्वगतम् ) पूजाविशेषेण 'जानामि कथ्यं त्ति । ( उप  
विशति । ) [ पूजाविशेषेण जानामि कार्यमिति । ]

गणिका—हृञ्जे । एव विअ । [ हजे । एवमिव । ]

चेटी—अवजुए । तह । अय्य ! राजमग्गे विस्सत्थसम्पाद अय्य काहुं  
इच्छदि अज्जुआ । कस्स किं कत्तव्यं । [ अवजुके । तथा । आर्ये ! राजमार्गं  
विश्वस्तसम्पातमार्यं कर्तुमिच्छत्यज्जुका । कस्य किं कर्तव्यम् । ] निर्भयदिनां ७५५

सबाहक—सुणादु अय्या । [ शृणोत्वार्या । ]

पूजाविशेषेण = पूजाया विशेषेण = बहुसमादरेण इति भाव । जानामि =  
अनुमिनोमि यत् मम कायम् = प्रयोजनम् । इष्टकार्यम् वा अत्र सिद्धयेत् इति  
भाव । श्रीगणपतिशास्त्री महोदयस्तु कार्यम्—धनिकोपद्रवपरिहारलक्षण मदी  
प्सितम् अनया सम्पादयितुं शक्यम् एव कथयति ।

विश्वस्तसम्पातम्—विश्वस्तं सम्पातं यस्य तम् ।

सबाहक—आर्ये ! मुझे धनिक से भय है ।

गणिका— यदि ऐसा है तो हूँ आसन दो ।

चेटी— ऐसा ही हो ( आसन देती है । )

गणिका—आर्य ( इस आसन पर ) बैठें ।

सबाहक—( स्वगत ) मैं पूजा विशेष के द्वारा अनुमान करता हूँ कि काय को  
सिद्धि होगी । ( बैठता है । )

गणिका—भरी ! ऐसा ही होने दो । ( चेटी के प्रति )

चेटी—माननीये ऐसा ही हो । ( सबाहक के प्रति ) आर्य ! माननीया आपको  
राजमार्ग में भयरहित करना चाहती हूँ । कोई क्या कर सकता है ।

सबाहक—आर्या सुनें ।

गणिका—अवहिदन्हि । [ अवहितास्मि । ] ११५५११ - -

सवाहक—पाटलिपुत्र मे जन्मभूमि । पकिदीए-वणिजओ जह । तदो भाअघेअपरिवुत्तदाए दसाए सवाहअवुत्ति उवजीवामी । [ पाटलिपुत्र मे जन्मभूमि । प्रकृत्या वणिगहम् । ततो भागधेयपरिवृत्ततया दशया सवाहक वृत्तिमुपजीवामि । ]

५१११११११

गणिका—सवाहओ अय्यो । सुउमारा कला सिक्खिदा अय्येण । [ सवाहक आर्य । सुकुमारा कला शिक्षितार्येण । ]

सवाहक—कलेत्ति सिक्खिदा । आजीविअं दाणि संबुत्तं । [ कलेत्ति शिक्षिता । आजीविकेदानीं सवृत्ता । ]

गणिका—णिण्वेदसूअरं विअ वअणं अय्यस्स । तदो तदो । [ निर्वेदसूचकमिव वचनमार्यस्य । ततस्तत् । ] ५११११११११

सवाहक—अब्जुए । सो दाणि अहं आअन्तुआण सुणिअ पुरस-

अवहितास्मि = श्रोतु सावधानास्मि ।

भागधेयस्य—भाग एव इति स्वार्थे धेय-प्रत्यय-भागधेयम्, परिवृत्तम् 'तस्य भाव' इति भावे तल् प्रत्यय, भागधेयस्य परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्याम् तथा एवमूलया दशया = अवस्थया या भाग्यदशा चकारपकिरिव परिभ्रमति । सवाहकवृत्तिम्—सवाहकस्य = अज्ञमर्दकस्य वृत्तिम् = उपजीविकाम् उपजीवामि ।

निर्वेदसूचकम् = दुःखसूचकम् ।

गणिका—मैं सावधान हूँ ।

सवाहक—पाटलिपुत्र (= पटना) मेरी जन्मभूमि है । मैं स्वभावतः वणिक् (= वनिया) हूँ । इसके बाद, मैं भाग्य के परिवर्तन होने के कारण सवाहक की वृत्ति को ग्रहण किये हुए हूँ ।

गणिका—आप सवाहक हैं । आपने सुकुमार कला की शिक्षा ली है ।

सवाहक—मैंने इसे कला के रूप में तो सीखा था पर साथ ही साथ इस मन्य मेरे लिये यही जीविका भी है ।

गणिका—आर्य का यह वचन निर्वेदसूचक है । तद्

सवाहक—आर्य ! सवाहकवृत्ति के उपयुक्त चर्चे लें

विसेमकोदूहलेण आअदो म्हि इम उज्जअणिं । [ अज्जुके ! स इदानीमहमा  
गन्तुकानां श्रुत्वा पुरुषविशेषकौतूहलेनागतोऽस्मीमामुज्जयनीम् । ] आगन्तुकैभ्य ५।१८

गणिका—ततो तदो । [ ततस्तत । ] मिथिपुपुत्रप्राप्ती २६५

गवाहक—तदो इह आअदमत्त एव्य कोशि सत्थवाहपुत्तो समासा  
निदो । [ तत इहागतमात्र एव कथित् सायवाहपुत्र गमासादित । ]

गणिका—केरिमो । [ कीदृश । ]

गवाहक—आइमिमतो अत्रिभमन्तो अणुच्छित्तो ललितो ललिददाए  
अविम्वओ चउरो महुरो दफरओ सदक्खिअओ अभिमदो आइदो तुट्टो होदि ।  
दय्य ण विकत्थेदि । अप्प वि सुमरदि, बहुअ पि अयइद्द यिसुमरदि ।  
अज्जुग । किं बहुणा, तस्स कुलपुत्तस्स गुणाण चउआअ पि सुदिग्घेण  
वि गिम्हदिअहण घण्णिणु ण मक्क । किं बहुणा, दक्खिअओ परकेरअ  
त्रिअ अत्तणो सरीर धारेदि । [ आहृतिमान् अविभ्रमन् अनुस्त्रिषो ललितो ललि

—११६५२ दि २ ४१५१३

आगन्तुकानाम्—इत्यत्र सम्यक्सामाय पठ्ठी आगन्तुकैभ्य इति रम  
णीय पाठ । पुरुषविशेषकौतूहलेन—पुरुषाणाम् विशेष अर्थात् विशिष्ट पुरुष  
इत्यथ पुरुषविशेषस्य वा तस्मिन् कौतूहलम् तेन हेतुना अर्थात् सवाहक-  
वृत्त्युपजीव्या पुरुषविशेषा उज्जयिनीं मुलभा इति आगन्तुकमुखात् विहाय  
पुरुषविशेषकौतूहलेन = नेव्यपुरुषविशेषलिप्पया इति शास्त्रिणोऽभिप्राय ।

आगतमात्र — आगतम् आगमनम् मात्रा = परिमाणम् यस्य तस्मिन्  
आगतमात्र एव समागादित = प्राप्त ।

अनुस्त्रिष — न उमिष = गधरदित । अविस्मय — विस्मय = गध<sup>१</sup> अवि

यह बात आगन्तुकों के मुख से सुनकर यहाँ ( उज्जयिनी में ) आया ।

गणिक — तब क्या हुआ ?

गवाहक — तब यहाँ आते ही एक घणिकपुत्र से मेरी भेट हुई ।

गणिका — यह कैसा है ?

गवाहक — यह रूपवान् विद्वान् मन्त्रहित ललित एवं अपने सौन्दर्य पर  
अभिमान म करने वाला चतुर मजुर एव महद्वय प्रतिष्ठित और पाचकों को  
मन्तुष्ट करने वाला है । दान देकर किमी से कहता नहीं । भय उपकार की भी  
धमकण करता है । बहुत उपकार की भी विस्मृत कर देता है । माननीये, अधिक

ततयाविस्मयश्चतुरो मधुरो दक्षः सदाक्षिण्योऽभिमत आवितस्तुष्टो भवति । दत्त्वा न विक्रम्यते । अल्पमपि स्मरति, बहुकमप्यपकृत विस्मरति । अञ्जुके । किं बहुना, तस्य कुलपुत्रस्य गुणानां चतुर्भागमपि सुदीर्घेणापि ग्रीष्मदिवस्तेन वर्णयितुं न शक्यम् । किं बहुना, दक्षिणतया परकीयनिवात्ननं शरीरं धारयति । ]

गणिका—( अपवार्य- ) हञ्जे । कोणु क्खु सो अच्यचारुदत्तस्स गुणाणं अपुकरेदि । [ हञ्जे ' को नु खलु न आर्यचारुदत्तस्य गुणानामनुकरोति ।

चेटी—मम वि कोदूहलं सोदुं । को णु हु उज्जअणि अत्तणो गुणेहिं मण्डेदि । ममापि कौतूहलं श्रोतुम् ' को नु खलूच्चयिनीमात्मनो गुणैर्नण्डयति । ]

गणिका—तदो तदो । [ ततस्ततं । ]

मवाहक—तदो तस्स गुणविक्रिणिदसरीरो विस्सारिदकलत्तो उव-  
जीविओ संनुत्तो । ततस्तस्य गुणविक्रीतशरीरो विस्सृतकलत्रं उपजीवी सइत्त । ]

गणिका—किं सो दरिदो । [ किं स दरिद्र । ]

द्यमानं विस्मय यस्य स तथोक्त । सदाक्षिण्य—दाक्षिण्येन सह वर्तमानं सदाक्षिण्यं । किं बहुना = कथितेन किं स्यात्, न किमपि स्यात् । दक्षिणतया = सहृदयतया ।

गुणविक्रीतशरीर—गुणेन विक्रीतं वर्णयितुं तादृशं शरीरं यस्य स । विस्सृतकलत्रं—विस्सृतं कलत्रं भार्या येन स ।

क्या कहें ? उस गुणवान् कुलपुत्र के गुणों का वर्णन करने के लिये त्रीप्सकाल का लग्ना दिन भी अपर्याप्त है । सन्धेप में, दया-दाक्षिण्यादि गुणों से वह ऐसा जान पड़ता है कि मानो अपना शरीर दूसरों के लिये ही धारण करता है ।

गणिका—( बीच में रोकर ) प्रिय दासी ? सचमुच मैं कौन हूँ, जो आर्य चारुदत्त के गुणों का अनुकरण कर सकूँ ? अर्थात् काई नहीं ।

चेटी—मुझे भी सुनने से कौतूहल हो रहा है । वास्तव में कौन हूँ जो अपने गुणों से उज्जयिनी को भूषित करता है ?

गणिका—तब क्या हुआ ?

मवाहक—तब उसके गुणों के वर्णन-भूत हो मैं उसका सेबक बन गया और अपनी पत्नी को भी भुला दिया ।

गणिका—क्या वह दरिद्र है ?

सबाहक—कह अणाचक्खिदे अय्या जाणादि । [ कथमनाख्यात  
आर्यां वानाति । ]

गणिका—एअस्सि दुल्लहो गुणविभवो त्ति । तदो तदो । [ एकस्मिन्  
दुल्लभो गुणविभव इति । ततस्तत । ]

चेटी—को गाम'सो अय्यो । [ को नाम स आर्य । ]

सबाहक—अय्यचारुदत्तो गाम । [ आर्यचारुदत्तो नाम । ]

गणिका—जुज्जइ । तदो तदो । [ भुज्यते ततस्तत । ]

सबाहक—तदो सो विभवमन्ददाए अस्माहीणपरिजणो विसज्जिअकु-  
हुम्भरणो चारित्तमत्तावसेसो सत्थयाहकुले पडिथसिदि । अह पि तेण  
अय्येण अट्ठमणुअट्ठो—अण्ण उवचिद्वहु त्ति । कह अण्ण एरिस मणु  
स्सरअण लभेअ त्ति, कह च तस्स कोमललल्लिवमहुरसरीरप्परिसकिट्ठ  
मे हत्थ साहारणसरीरसम्मदूदेण सोअणीअ करिस्स त्ति जादणिअवेदो  
पदसरीररक्खणत्थ जूदोयजीवी सबुत्तो । [ तत स विभवमन्ददाएस्वाधीन  
परिजनो विसज्जितकुट्टुम्भरणचारित्रमात्रावशेय सार्यवाहकुले प्रतिवसति । ]

अस्वाधीनपरिजन—न स्वाधीन आत्माधीन परिजन यस्य स । विस  
ज्जितकुट्टुम्भरण—विसज्जितम् = दूरीकृत परित्यक्त वा कुट्टुम्भरण = परिवार  
पालन येन स । चारित्रमात्रावशेय—चारित्रमात्रम् = स्वकीयव्यक्तित्वमात्रम्  
अवशेय यस्य स । अभ्यनुज्ञात = आदेशित । उपतिष्ठताम् = सेवताम् अन्यम्

सबाहक—विना कही बात को भी आप कैसे जान जाती हैं ?

गणिका—एक व्यक्ति में यह सम्पूर्ण गुण दुल्लभ हैं ( इसीलिये मैं ऐसा कह  
रही हूँ ) । तब फिर क्या हुआ ?

चेटी—उस आर्य का नाम क्या है ।

सबाहक—उसका नाम आर्य चारुदत्त है ।

गणिका—उपयुक्त ही है । तब क्या हुआ ?

सबाहक—इसके बाद यह अधीनता के कारण अपने परिजनों से छूट गया  
और कुट्टुम्भ वा भरण-वोपण त्यागकर एकमात्र अपने चरित्र ही रक्षा करते हुए  
वज्रिङ्कुल में रहने लगा । उस महात्मा ने मुझे भी आदेश दिया कि तुम भी  
किसी दूसरे की सेवा करो । ऐसा ही अर्थ पुरुषार्थन जैसे उपलब्ध हो सकेगा

अहमपि तेनार्येणाभ्यनुज्ञातोऽन्यमुपतिष्ठतामिति । कथमन्यमीदृश । मनुष्यरत्नं लभेयेति, कथं च तस्य कोमलललितमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थं मे । हस्तं, साधारण शरीरसमर्देन शोचनीयं करिष्यामीति जातनिर्बन्धो दग्धशरीररक्षणार्थं धृतो पञ्जीवी सवृत्त । ]

( गणिका सहर्षबाष्प चेटीमवलोकयति । )

चेटी—तदो तदो । [ ततस्तत । ]

संवाहक—तदो बहूणि दिनाणि मए पराइदेण पुरुसेण कदाइ अहं पि दहसु सुवण्णेषु पराइदो भिह । [ ततो बहूनि दिनानि मया पराजितेन पुरुषेण कदाचिदहमपि दशसु सुवर्णेषु पराजितोऽस्मि । ]

गणिका—तदो तदो । [ ततस्तत । ]

संवाहक—तदो अज्ज वेसमग्गे जइच्छोवणदो समासादिदो भिह ।

जनम् इति शेष । कोमलललितमधुरशरीरस्पर्शकृतार्थम्—कोमल च तदललित च इति कोमलललित च मधुर च इति कोमलललितमधुरम् एवभूत शरीरं तस्य स्पर्शेन कृतार्थम् = कृतकृत्यम् एवरूप हस्तमित्यर्थं, साधारणशरीरसमर्देनेन—साधारणशरीरस्य = सामान्यजनशरीरस्य समर्देनेन । दग्धशरीररक्षणार्थम्—दग्ध शरीरं तस्य रक्षणार्थम् धृतोपञ्जीवी—धृतेन उपजीवति आत्मनिर्वाहं करोतीत्यर्थं ।

और उसके कोमल, मधुर, एव ललित शरीर के स्पर्श से कृतार्थ एव अभ्यस्त यह मेरा हाथ सर्वसाधारण शरीर के सम्मर्दन से कैसे सन्तुष्ट होगा ? यही शोचनीय हो गया । उसी दुःख से दुःखी मैं इस कम्बलित शरीर की रक्षा के लिये 'जुआरी' हो गया हूँ ।

( गणिका आनन्द की आँसू के माथ मर्पं चेटी को देखती है )

चेटी—तव फिर क्या हुआ ?

संवाहक—तव मैंने जिसे बहुत दिनों तक पराजित किया उसी ने एक दिन जुए में मुझको दश स्वर्ण मुद्रा से पराजित कर दिया ।

गणिका—तव क्या हुआ ?

संवाहक—इसके बाद आज, भाग्य के उलटा होने के कारण यहाँ मुझको इसी



तस्स भएण इह पविट्ठो । एउ अय्या जाणादु । [ ततोऽय वैशमार्गे  
यदृच्छोपनतः समामादितोऽस्मि । तस्य भयनेह प्रविष्टः । एवमार्या जानानु । ]

गणिका—( आत्मगतम् ) अहो अचचाहिद ! एव खु मण्णे वासपाद  
पणिणासेण पक्खिणो आहिण्डन्ति त्ति । ( प्रकाशम् ) एय गदे अत्तवेरओ  
अय्यो । हला ! एहि त जण विसज्जेहि । [ अहो अत्याहितम् । एव खलु  
मय वासपादपविनाशेन पक्षिण आहिण्डन्त इति । एव गत आत्मीय आय ।  
हला ! एहि त जन विसजय । ]

१६६५५५ १२३

चगी—सह । ( निष्फान्ता । ) [ तथा । ]

गणिका—ए सु अय्येण अत्थणिमत्ता चिन्ता कादव्या । अय्यचारु  
न्तो एव नेत्ति त्ति अय्यो जाणादु । [ न क्त्वायेणार्यनिमिता चिन्ता  
कर्त्तव्या । आर्यचारुदत्त एव ददाती-यार्या जानानु । ]

( प्रविश्य )

वशमाग—वैशस्य = वैश्यागृहस्य मार्गं तस्मिन् अर्थात् यत्र गणिका  
निवसन्ति इति भावः । यदृच्छोपनतः-यदृच्छया उपनतः = आगतः अहम् तै  
ममामादितः = प्राप्तः ।

अत्याहितम्—अति अधिकम् अतिशयन वा आहितम् = महद्दयम् समुप  
स्थितम् अत्याहित महद्दयम् न्यमरः । वासपादपविनाशेन = निवासघृष्टविनाशेन  
हतुना आहिण्डन्ते = व्याकृतीभूय तस्तत उच्यते पक्षिण इति शेषः ।

वश्यालय ( की गली ) के समीप में वह धनिक ( विजयी जुआरी ) मिल गया ।  
उसी के भय से मैं यहाँ भागा हूँ । मरी कहानी आप इस रूप से जानें ।

गणिका—( स्वगत ) आह ! बहुत ही आपत्ति है । आवाम् वृष्ट के विनाश के  
कारण जैसे पक्षी दूधर दूधर आधसहान हाकर घूमते फिरते हैं वसा मैं समझती  
हूँ । ( प्रकाश रूप से ) पूर्वा स्थिति में आप तो मेरे आत्मीय ( सम्यधी ) हैं ।  
( चटी के प्रति ) हला ! जाओ विजयी जुआरी का ( कुछ द्रव्य लेकर ) विदा करा ।

नेरी—येमा ही हो ( निराल जाती ह । )

गणिका—आप अरु के अियरु अ रिद हा अ फरे । आर्य आरुदत्त ही धन द ररु  
है, एमा भाप ममसें ।

( प्रवेश कर )

चेटी—अञ्जुए ! विसञ्जिदो सो जणो, परितुडो गदो अ । [ अञ्जुके । विसर्जित स जन, परितुष्टो गतश्च । ]

सवाहक—अणुगगहिदो म्हि । [ अनुगृहीतोऽस्मि । ]

गणिका—गच्छदु अर्यो सुहिज्जणदसणेण पीदिं णिव्वत्तेहुं ।  
[ गच्छत्वार्यं सुहज्जनदर्शनेन प्रीतिं निर्वर्तयितुम् । ] *कृपया म३<sup>२</sup>*

सवाहक—अज्ज एव कदाह णिव्वेदेण पव्वजेअं ! जह् इअं परिअणे सङ्कन्ता कला भवे, तदो अर्याए अणुगगहिदो भवेअं ! [ अथैव कदाचिन्निर्वेदेन प्रब्रजेयम् । यदीय परिजने सब्बान्ता कला भवेत्, तत आर्याणां नुगृहीतो भवेयम् । ]

गणिका—जस्स किदे इअं कला सिक्खिदा, सो एव्व अर्येण उवचिद्धिदव्वो भविस्सदि । [ यस्य कृते इय कला शिक्षिता, स एवार्थेणोपस्थातव्यो भविष्यति । ]

सवाहक—( स्वगतम् ) णिउणं खु पच्चाचक्खिदो म्हि । को हि णाम

सुहज्जनदर्शनेन—सुहज्जनानाम् दर्शनेन प्रीतिं निर्वर्तयितुम् = सम्पादयितुम् गच्छतु आर्य इति भाव ।

निर्वेदेन = वैराग्येण हेतुना ।

उपस्थातव्य = सेवितव्य पूजयितव्यश्च ।

चेटी—माननीये ! उसको द्रव्य दे दिया है और वह सन्तुष्ट होकर चला भी गया ।

सवाहक—मैं अनुगृहीत हूँ ।

गणिका—कृपया आप जायें, अपने वन्दुओं को दर्शन देकर प्रसन्न करें ।

सवाहक—मैं आज ही उद्वेग के कारण 'सन्यास' या प्रव्रज्या ले लूँगा । किन्तु यदि आप अनुग्रह करके अनुमति दें तो अभ्यस्त मम्मर्दन कला को आपके परिवार के लोगों को सिखा दें ।

गणिका—जिसके लिये आपने इस कला का अभ्यास किया उसी की आप सेवा करें ।

सवाहक—( स्वगत ) गणिका ने षड़ी निपुणता के साथ मेरी घात का प्रत्या-

अपणा किं पच्युञ्जारेण विणासेदि । ( प्रकाशम् ) अय्ये । गच्छामि  
दाय अह । [ निपुणं खलु प्रत्याह्वयातोऽस्मि । को हि नामात्मना कृत प्रत्युप  
कारेण विनाशयति । आर्ये ! गच्छामि तावदहम् । ] ३१वी २०

गणिका—गच्छदु अय्यो पुणोदसणाअ । [ गच्छत्वार्यं पुनर्दर्शनाय । ]

सबाहक —अय्ये ! तह । ( निष्कान्त । ) [ आर्ये ! तथा । ]

गणिका—ह, सरो विअ । [ ह शब्द इव । ]

( प्रविश्य )

चेट —विच्छित्तिए ! विच्छित्तिए ! कहिं कहिं अब्जुआ । [ विच्छि-  
तिके ! विच्छित्तिके ! कुत्र कुत्राण्जुका । ]

गणिका—हञ्जे ! किं एद । [ हञ्जे किमेतत् । ]

निपुणम् = सुस्पष्ट यथा स्यात् तथा प्रत्याह्वयात् = अस्वीकृत निन्दितो वा  
गणिकया इति शेष ।

दर्शनाय = दर्शनं दातुम् इत्यर्थः ।

तथा = तथा अस्तु । एव तावत् नायकविषया रति परिपोषिता इति  
तात्पर्यार्थः ।

विच्छित्तिका इति तत्रत्या काचित् परिवारिका अस्ति तस्या इय सज्ञा अत  
एव सम्बोधयति विच्छित्तिके इति ।

किमेतत् = किमेतत् आपतितम् इत्यर्थः ।

क्यान किया । कौन ध्यनि अपने रिप् उपकार को उपकार के द्वारा विनाश करना  
चाहता है ? ( प्रकाश रूप से ) आर्ये ! तब मैं जाता हूँ ।

गणिका—आर्ये जाह्ये और फिर दर्शन दीजिएगा ।

सबाहक—ऐसा ही हो । ( निरल जाता ह । )

गणिका—हाँ किसी को भागान भा रही है ।

( प्रवेश कर )

१ ( वसन्तसेना वा सेवक )—विच्छित्तिके विच्छित्तिके ! माननीया गणिका  
( वसन्तसेना ) कहाँ हैं ?

गणिका—आय ! क्या बात है ?

चेट —हं, विप्रलब्धो म्निह, वादाअणणिक्खामिद्वपुव्वकाआए ओण  
 मिअपओहराए कण्णऊरस्स परिप्फन्दो अज्जुआए जेण ण दिट्ठो ।  
 [ ह, विप्रलब्धोऽस्मि, वातायननिष्कामितपूर्वकाययाऽवनमितपयोधरया कर्णपूरस्स  
 परिस्पन्दोऽज्जुकया येन न दृष्ट । ]

गणिका—लघुजनस्स सुलहो विम्हओ । कि दे उस्सेअस्स कारणम् ।  
 [ लघुजनस्य सुलहो विस्मय । कि ते उत्सेकस्य कारणम् । ]

चेट —सुणादु अज्जुआ—एसो उग्गवेरोण . ओग्गाहणणिव्वत्तिट्ठेण  
 पस्सुदमदगन्धं राअमगं करन्तेण मज्जलहत्थिणा भद्रकवोदएण अशे-  
 अपुरुससङ्कुलेसु राअमगोसु उत्तरिअपडविराअदाए अहिअलक्खणीओ  
 कोच्चि प्पव्वइदो समासादिदो । [ शृणोत्वज्जुकाएष उग्रवेगेनावगाहननिर्वर्तितेन  
 प्रसृतमदगन्ध राजमार्गं कुर्वता मज्जलहस्तिना भद्रकपोतकेनानेकपुरुषसङ्कुलेषु राज  
 मार्गेषूत्तरीयपटविरागतयाऽधिकलक्षणीय कश्चित् प्रव्रजित समासादित । ]

विप्रलब्धोऽस्मि = अहं वञ्चित , अकृतार्थो वा अस्मि अत वातायननिष्कामि-  
 तपूर्वकायया—वातायने = गवाक्षे निष्कामित = सकामित पूर्वकायो यस्या  
 तया, अवनमितपयोधरया—धरतीति धर , पयसा वर इति पयोधर , अवनमित  
 पयोधर यस्या तया, एव भूतया अज्जुकया ( भवत्या ) कर्णपूरस्य = 'वसन्त-  
 सेनाया मृत्युविशेष सुधामधुरशब्देन श्रोतु कर्णौ पूरयतीत्यर्थक' ( एवभूतस्य  
 मम ) परिस्पन्द = वीरतापूर्णकर्म न दृष्ट तेन हेतुना अह वञ्चित ।

उत्सेकस्य = गर्वस्य ।

भद्रकपोतकेन—दशवर्ष भवेत् पौत स एव पौतक स्वार्थे क , भद्रकथासौ

चेट—मेरा दुर्भाग्य है क्योंकि गवाक्षके बाहर अपने शरीर का ऊपरी भाग  
 निकालकर और नवने के कारण झुकें हुए स्तनों के साथ आपने मेरा ( कर्णपूरका )  
 वीर कर्म नहीं देखा ।

गणिका—साधारणजन में सहज ही विस्मय होता है । तुम्हारे गर्व का  
 क्या कारण है ?

चेट—आर्या सुनिये—मगल कार्य के योग्य भद्रक नामक हाथी के वपचा  
 जब कि स्नान करके यही तेजी से राजमार्ग को अपने मटगन्ध से आमोदित करते  
 हुए लौट रहा था तब उसने अनेक पुरुषों से व्याप्त राजमार्ग में उत्तरीय वस्त्र से  
 युक्त एक परिव्राजक को पकड़ लिया ।

गणिका—ह, तदो तदो । [ ह ततस्तत । ]

चेट—तदो मए हस्तिहस्त्यामिदताडिअमाणो दन्तन्तरपरिवन्तमाणो हस्तिहस्त्यपडिदचरणो तदो हा हा विपाडिदो हा हा हदो त्ति जणवाणे सवुत्ते तदो दिण्णकरप्पहारेण परिवत्ति हस्ति करिअ मोइदो सो परि व्धानो । [ ततो मया हस्तिहस्तामदुताब्धमानो दन्तान्तरपरिवर्तमानो हस्ति हस्तपतितचरण ततो हा हा विपाटितो हा हा हत इति जनवादे सवृत्ते ततो दत्तकरप्रहारेण परिवर्तित हस्तिन कृत्वा मोचित स परिघाट् । ] १५ लि ६

गणिका—पिअं मे । तदो तदो । [ प्रियं मे । ततस्तत । ]

पीतकश्च तेन मगलहस्तिना = माङ्गलिककर्मसु उपयुक्तेन हेतुना प्रसृतमदगन्धम् प्रभूतेन मन्त्रेण गन्धम्—गन्धयुक्तम् राजमार्गम् राजनीयपथम् इत्यर्थं एषभूतेन भद्रकपोतकेन प्रवृत्त = परिघाट समासान्ति = प्राप्त ।

हस्तिहस्तामर्दताब्धमान —हस्तिन = गजस्य हस्त शुण्डादण्ड तस्य धाम दन = आघातेन ताब्धमान द तात्तरपरिवन्तमान —दन्तयो अन्तरम् = मध्यम् तत्र परिवर्तमान हस्तिहस्तपतितचरण —हस्तिहस्ते पतित तादृश चरण यस्य य करिकरगृहीतपाद इत्यर्थं । विपाटित = विदलित ( परिघाट् इति शेष ) जनवादे—जनानाम् वा = एव तस्मिन् प्रवृत्ते = उत्थिते सति दत्तकरप्रहारेण—दत्त करप्रहार यन तेन ( मयति शेष )

मे प्रियम् = मम प्रिय ( वस्तु ) जातम् इति भावः ।

गणिका—हाँ ! तय फिर क्या हुआ ? १५

५ —तय वह हाथी के हाँसों के आघात से पीड़ित होकर उसका दाता के भीतर आ गया । जब दाथी ने उसे सूँड़ के सहारे चरण से दधाना चाहा तय जनता का हाय ! हाय ! फाड़ दिया गया हाय ! हाय मारा गया —यह राय ( गटर ) हुआ । मैंने अपने हाथों के प्रहार के द्वारा उम्झी स्थिति में परिवर्तन लाया और उस लयासी का बचाव ।

गणिका—मरे लिय अबदा हुआ ( अर्थात् मेरा प्रिय ही हुआ ) । तय फिर क्या हुआ ?

चेट — तदो सव्वो जणो भणादि—अहो चेडस्स कम्म त्ति । ण  
 उण कोष्णि किं पि इच्छइ दावं । तदो अज्जुए ! केण वि कुलवुत्तेण  
 उद्दाणि आभरणट्ठाणाणि विलोइअ अद्दुट्ठेणाणिअ वि उण अलद्ध  
 पेक्खिअ दव्वं उवालभिअ दिग्घ णिस्ससिअ एत्तओ मे विभवो त्ति  
 करिअ परिजणहत्थे अअ पावरओ पेसिदो । [ तत् सर्वो जनो भणति—अहो  
 चेटस्य कर्मेति । न पुन कश्चित् किमपीच्छति दातुम् । ततोऽज्जुके ! केनापि  
 पुत्रपुत्रेणोचितान्याभरणस्थानानि विलोक्याद्दुष्टेनानीयापि पुनरलब्ध प्रेक्ष्य दैव  
 मुपालभ्य दीर्घं निःश्वस्यैतानान् मे विभव इति कृत्वा परिजनहस्तेऽयं प्रावारक  
 प्रेषित । ]

०१५१

भणति = कथयति, चेटस्य = वरान्तसेनाभृत्यस्य कर्म = वीरकर्म एतत् भवति,  
 यत् परित्राजक हस्तिहस्तात् रक्षित तत् = तदनन्तरम् कुलपुत्रेण = कुलीनेन  
 जनेन ( आर्यचारुदत्तेन इति शेष ) उचितान्याभरणस्थानानि—उचितानि,  
 अभ्यस्तानि, निरपरिचितानि आत्मन बहुमणिबन्धानि आभरणस्थानानि =  
 अलङ्कारधारणस्थानानि विलोक्य = तानि आभरणशून्यानि दृष्ट्वा अद्दुष्टेन =  
 दक्षिणहस्ताद्दुष्टेन ( करणे तृतीया ) 'कर्णादिस्थानानि' अलङ्कार अस्ति न वा  
 इति ज्ञातुम् आनीय = सगत्नम् आकृष्य पुन आभरणम् अलब्धम् = अप्राप्त प्रेक्ष्य=  
 विप्राय दैवम् उपालभ्य = तिरस्कृत्य दुःखात् दीर्घं निःश्वस्य = दीर्घश्वास परित्यज्य  
 'एतानान् मे विभव इति कृत्वा' इति मत्वा परिजनहस्ते ( अधिकरणविवक्षया  
 सामी वस्तुतस्तु तृतीया एव भवितुमर्हति ) साधारणवस्तुदाने स्वयं सकुचित  
 भृत्यहस्तेन प्रावारक = आत्मन उत्तरीयवस्त्रम् प्रेषित = वीरकर्मण पुरस्काररूप  
 वस्त्राण्डम् प्रेषितवान् ।

चेट—तब सब लोग एकत्रित हो गये और कहने लगे कि 'चेट का यह  
 ( अद्भुत ) वीरतापूर्ण कार्य है' । किन्तु कोई कुछ देना नहीं चाहता था । तब  
 माननीये ! किसी कुलीन महानुभाव ने अन्य आभरणों के सुपरिचित स्थानों को  
 शून्य देखकर आगूठे के द्वारा अष्ट कर्णादिगत स्थानों को भूषण है या नहीं यह  
 जानने के लिये खींचा, पर कुछ भी नहीं उपलब्ध हुआ । तब दैव को उपालम्भ  
 देकर और लम्बी सांस लेते हुए 'मेरा वैभव इतना ही है'—ऐसा कड़कर परिजन  
 के हाथ में ( सामान्य द्रव्य के दान देने में स्वयं सकुचित भाव से ) देकर यह  
 उत्तरीय वस्त्र भेज दिया ।

गणिका—को पु खु अग्र्यचारुदत्तस्स गुणाण अणुफरेदि । [ को नु खल्वार्यचारुदत्तस्य गुणाननुकरोति । ]

चेटी—अञ्जुए । मम वि कोदूहल अत्थि । को पु खु एसो । [ अञ्जुके । ममापि कौतूहलमस्ति । को नु खल्वेप । ]

गणिका—केण वि साहुणा पुरुसेण होदब्ब । [ केनापि साधुना पुरुषेण भवितम्भ्यम् । ]

चेटी—साहु पुच्छीअदु दाव । [ साधु पृच्छपतां तावत् । ]

गणिका—हब्जे । एकपुरुषपक्षपादिदा सब्वगुणाण हन्ति । [ हजे । एकपुरुषपक्षपातिता सर्वगुणान् हन्ति । ]

चेटी—भह । से णाम तुघ जाणासि । [ भद्र ! अस्य नाम त्व जानासि । ]

चेट —ण ह्णु जाणामि । [ न खलु जानामि । ]

गणिका—अदिलह्णु तुए किद । [ अतिलघु त्वया कृतम् । ]

एकपुरुषपक्षपातिता—एकपुरुषे = चारुदत्तरूपे स्नेहविषयीभूते तादृशे एक-पुरुषे पक्षपातिता = गुणपक्षपातिता अर्थात् को नु खल्वार्यचारुदत्तस्य गुणान अनुकरोति इति कथनेन गुणपक्षपातिता सिद्धपति अत एव सब्वगुणाभ्य नान्य इति गुणविषय एकाग्रिदृष्टिदोषता सर्वगुणान् अन्यथा सर्वगुणान् हन्ति = असहनेन न मपयति ।

अतिलघु = त्वया अतिशयन लघु = हीन बर्ण कृतम् = आचरितम् यत् त्व तस्य नाम जिज्ञासयापि न जानासि ।

गणिका—( चेटी की ओर देखकर ) सबसुच में यह कौन है जो भाय चारुदत्त क गुणों का अनुकरण करता है ?

चेटी—माननीये ! मुझे भी कौतूहल हो रहा है । यह कौन है ?

गणिका—यह निश्चय ही कोई सांपुरण है ।

चेटी—अच्छा तब पूछना चाहिये ।

गणिका—माननीये ! एक पुरुष क गुणों क प्रति पक्षपात दूसरों क गुणों को सहन नहीं करता ।

चेटी ( ये के प्रति )—भद्र ! क्या भाय उमका नाम जानते है ?

चे —मैं नहीं जानता ।

गणिका—आपन टीब नहीं किया ।





## अथ तृतीयोऽङ्कः

( तत्र प्रविशति नायको विदूषकश्च । )

नायक—वयस्य । वीणा नामासमुद्रोत्थित रत्नम् । कुत ;

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता सखीव  
सङ्कीर्णदोषरहिता विषयेषु गोष्ठी । ५६२।

क्रीडारसेषु मदनव्यसनेषु कान्ता

स्त्रीणां तु कातरतिविघ्नकरी सपत्नी ॥ १ ॥

असमुद्रोत्थितम्—समुद्रात् उत्थितम् इति समुद्रोत्थितम् न तथा इति असमुद्रोत्थितम् । अर्थात् वीणा नाम रत्नमिव उत्तमवस्तु समुद्रस्तु रत्नाकर अस्त्यथ परन्तु तत्प्रामरत्नात् अन्यत् रत्न भुवने अस्ति चेत् तत्तु वीणा एव इति तात्पर्यम् । कुत = कस्मात् हेतो एव वच्मि इति चेत् ? तर्हि वीणाया गुणान् शृणु ।

उत्कण्ठितस्येति—वीणा उत्कण्ठितस्य = इष्टप्राप्त्यै व्याकुलीभूतस्य एव कृतनिश्चयस्य ( जनस्य ) हृदयानुगता—हृदस्य हृदय वा अनुगता इति हृदयानुगता = मनोनुकूला सखीव विनोदकरी भवतीति भाव विषयेषु = भोग्यवस्तुषु सङ्कीर्णदोषेण रहिता गोष्ठी = सगीतपरिषद् इव अस्ति मदनव्यसनेषु—मदनस्य व्यसनानि तेषु अर्थात् कामव्यापारेषु इत्यथ क्रीडारसेषु = कामलक्षणामुष्णीणामुष्णानाम् इव = स्वकीयवनिता इव रागवद्भिनी अस्ति तथैव स्त्रीणाम् कातरति

( इसके बाद नायक और विदूषक का प्रवेश )

नायक—वयस्य । वीणा एक ऐसा रत्न है जो समुद्र से उत्पन्न नहीं हुआ है ( समुद्र से चौदह रत्न उत्पन्न माने जाते हैं ) ।

व्योक्ति—( वीणा ) उत्कण्ठित जन के लिये मनोनुकूल मर्दी की भांति भोग्य विषय में सङ्कीर्ण दोषरहित ( वीणा पक्ष में कमसुरा दोष से रहित ) गोष्ठी पक्ष में विषयान्तर = अस्पष्टता दोषरहित ) गोष्ठी की तरह काम की रसाली स्त्री-ओं में काता की भांति और पति क प्रति स्त्रियों क प्रेम में निम्न जाने वाली मर्दी क समान है ( वीणा क प्रति पुरखों का विशेष आकर्षण स्त्रियों को हुआ होता है इसलिये वीणा से उनकी सपत्नी जैसी ईर्ष्या होती है ) ॥ १ ॥

विदूषक—भो वयस्स ! को कालो किंपरिघोषणदाए णिस्सन्पादा  
 राअमग्गा । कुक्कुरा वि ओमुत्ता । वञ्चं णिहं ण लभामो । अएणं च  
 दाणि अञ्छरीञ्चं । इम हद्वीणं ण रमामि । अहिअदिदत्थाणे विच्छि-  
 ण्णतन्तिआ होदु । [ भो वयस्य ' क काल' कृतपरिघोषणतया नि'सन्पाता  
 राजमार्गा । कुक्कुरा अण्ववहृषा । वय निद्रा न लभानहे । अन्यच्चैदाती-  
 नाश्चर्यम् । इना हतवीणां न रने । अविन्दत्स्थाने विच्छिन्नतन्त्रीका भवतु । ]

नायक—वयस्य ! भावशाबलेन बहुश खल्वद्य मधुरं गीतम् । न  
 च भवान् रमते ।

विदूषक—अद्य एव एतं अहं ण रमामि । मधुरं पि बहु खादिञ्च

विष्णुकरा = स्वामिप्रणयवाधिका सपत्नी इव भवति ( यतः सा पुरुषाणाम् परमा  
 कर्षणी इत्यर्थः ) ॥ १ ॥

क. काल = क काल व्याप्येति भावः । कृतपरिघोषणतया—कृता परिघो-  
 षणा श्रेषु, तथा भाव तथा । नि'सन्पाता—निर्गत' सन्पात' = गमनागमनम्  
 अस्मान् ते । अर्थात् गमनागमनशून्या' राजमार्गा' = राजपथा' इत्यर्थः । अघिर  
 दृटस्थाने = निरापदस्थाने इति भावः । विच्छिन्नतन्त्रीका = विच्छिन्ना श्लथीकृता  
 तन्त्री यस्या' मा, अर्थात् श्लथतन्त्रीयुक्ता भवतु = तिष्ठतु इति आशयः ।

भावशाबलेन—भावाना शाबलेन = वैचित्र्येण । बहुश = बहुवारमित्यर्थः ।

विदूषक—हे मित्र ! बहुत देर हुई, नगरपाल की घोषणा के हेतु इस समय  
 राजमार्ग जन-समागम में शून्य है । कुक्कुर भी सो गये हैं, किन्तु हम लोग  
 आनन्द ( अच भी ) नहीं ले रहे हैं । दूसरा आश्चर्य यह है कि मैं इस वीणा में  
 भी आनन्द नहीं ले रहा हूँ । अतएव इमे किसी निरापदस्थान में श्लथतन्त्रीयुक्त  
 वनाम्बर रत्न दिया जाय ( भावार्थ यह है कि किसी पक्की जगह पर पटककर  
 इनकी तान तोड़ दी जाय ) ।

नायक—मित्र ! वीणाने अनेक भावों के कारण आज कई धार मधुर गान  
 किया । किन्तु आप क्यों नहीं आनन्दित हो रहे हैं ?

विदूषक—इसीलिये तो मैं इसमें आनन्दित नहीं हूँ । ( क्योंकि ) मधुर

अजिण्ण होइ । [ अत एवैतामह न रमे । मधुरमपि बहु खादितमजीर्णं भवति । ]

नायक—सर्वथा सुव्यक्त गीतम् । कुत ,

रक्त च तारमधुर च सम स्फुट च

भावापिन च न च साभिनयप्रयोगम् ।

किं वा प्रशस्य विविधैर्बहु तत्तदुक्त्या

मित्यन्तर यदि भवेद् युवतीति विद्याम् ॥ २ ॥

विदूषक—काम पससेदु भव । मम खु दाव गाअन्तो मणुस्सो इत्थिआ वि पठन्ती वभअ आदर ण देदि । गाअन्तो दाव मणुस्सो

रक्तेति—( तथा = वीणया ) रक्तम् = अनुरागपूणम् च तारमधुरम्—  
तारम् = उच्चैश्च च मधुरम् = श्रुतिसुखम् च इति तारमधुरम् अर्थात् उच्च  
तथा शोभनम् इत्यर्थ च समम् = वैषम्याभावम् स्वरतालसामञ्जस्यसवलितम्  
वा स्फुट च = प्रमन्न सुव्यक्त च भावापितम्—भावेन = अनुसूपभावेन अपितम्=  
युक्तम् इत्यर्थ अथवा अपित = प्रदत्त भाव = अनुसूपप्रकारादिभाव यत्र  
अथ च न साभिनयप्रयोगम् = अभिनयसयुक्तभावमित्यर्थ गीतम् वा तन्त्र  
बहुविधै = नानाप्रकारै उक्त्वा किं भवेत् यदि ना मित्यन्तर = बुद्ध्यात्तरित  
यथा स्यात् तथा भवेत् तर्हि अहम् ताम् युवती इति विद्याम् = जानीयाम् ।  
( यत सामान्यत पुरुषगीते स्वरकार्करय जायते रमणीगीते तु समधिकमधुरता  
भवतीति भाव । ) ॥ २ ॥

पदार्थ भी अधिक ग्रा खेने पर अजीण कर देता है । ( सावय पद कि अनेकों धार का गायन हुआ जायगत्त मधुर गीत भी उद्देश को पदा देता है । )

नायक—वीणा ने सब प्रकार से सुस्पष्ट गान किया है । क्योंकि—

रागयुक्त उच्च एवं मधुर वैषम्यरहित परिष्णु भावपूण तथा अभिनय प्रयोग मे युक्त ( गान किया है ) । उपयुक्त स्वरों को नाना प्रकार से कह-बदल कर बहो मर प्रणामा की जाय । ऐसा मालूम पड़ता है कि मानों दीधार की आत्मा कोई युवति ही ना रही हो ॥ २ ॥

विदूषक—आप भले ही प्रशंसा करें । किन्तु गाते हुए पुरुष या पत्नी हुई स्त्री दोनों ही मेरे अनुराग को नहीं बढ़ा सकते । एतन्माहा को धारण किए हुए

रक्तसुमणावेष्टितो विअ पुरोहिदो दिढं ण सोहइ । इत्थिआ वि पठन्ती  
छिण्णणासिआ विअ घेणुआ अदिविरूवा होइ । [ काम प्रशस्तु भवाद ।  
मम खलु तावद् गायन् मनुष्य स्यपि पठन्त्युभयमादर न - ददाति । गायस्ताव  
न्मनुष्यो रक्तसुमनोवेष्टित इव पुरोहितो दृढ न शोभते । स्यपि पठन्ती छिन्ना  
सिकेव घेनुरतिविरूपा भवति । ]

नायक—सखे ! उपारूढोऽर्धरात्रः । स्थिरतिमिरा राजमार्गाः ।  
निस्सम्पातपुरुषत्वात् प्रसुप्तेवोज्जयिनी प्रतिभाति । कुत' ;

असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं गतो ह्यश्रमपक्षचन्द्रः ।

तोयावगाढस्य वनद्विपस्य विषाणकोट्टीव निमज्जमाना ॥ ३ ॥

श्रादरम् = प्रीतिम् । रक्तसुमनोवेष्टित — रक्ताश्च ते सुमनसश्च तामि वेष्टित,  
रक्तपुष्पभूषित इत्यर्थ । छिन्ननासिका—छिन्ना नासिका यस्या सा तथा ।

अर्धरात्र — रात्रे अर्धम् इति अर्धरात्र । उपाहृढ' = सजात, उपस्थितो  
वा । स्थिरतिमिरा — स्थिरम् = घन तिमिरम् = अन्धकारम् यत्र एवभूता राज  
मार्गा सन्ति । नि सम्पातपुरुषत्वात्—निरस्त सम्पात गमनागमन यस्मात्,  
एवभूत पुरुष यत्र, तेषा भाव तस्मात्, अर्थात् सर्वत्र पुरुषसंचारा-  
भावात् इत्यर्थ ।

असाविति—तोयावगाढस्य—तोये जले, अवगाढ = स्थित तस्य, जल-  
मग्नस्येत्यर्थ, वनद्विपस्य = वनगजस्य, निमज्जमाना = मज्जनप्राया विषाणकोट्टीव=  
दन्ताप्रभाग इव, 'विषाण स्यात्पशुभृद्भेदन्तयो' इत्यमर । असौ हि अश्रम-

पुरोहित की भाँति गाता हुआ मनुष्य शोभा का पात्र नहीं होता और पाठ करती  
स्त्री भी कटी नासिका वाली गाय की तरह रूपहीन दिग्राह पड़ती है ।

नायक—मित्र आधी रात हो गई । राजमार्ग में घोर अन्धकार का साँचा  
है । पुरुषों के गमनागमन के अभाव के हेतु मानों उज्जयिनी सोई हुई की तरह  
प्रतिभासित हो रही है ।

यद्यपि—

वह अष्टमी का चन्द्रमा अन्धकार को अचकाश डेकर अस्त हो रहा है ।  
लगता है जैसे जल के भीतर डुबकी गाने हुए घनेले हाथी के दाँतों की कोटियाँ  
भी डूब गई हों ( अष्टमी के चन्द्रमा की भी दो कोटियाँ होती हैं ) ॥ ३ ॥

विदूषक—सुन्दु भय भणानि । अन्तद्विअमाणचन्दलद्धावआमो  
आदरदी चिअ पासानाने अघआरो । [ सुद्ध भवान् भणति । अन्तर्दधा  
नच दलध्वावकाशोऽवतरतीव प्रासादादघकार । ]

नायक—( परिक्रम्य ) इन्मस्मदीय गृहम् । वधमानक ! वधमानक !

विदूषक—वद्धमाणअ ! वद्धमाणअ ! दुवार अत्रानुत् । [ वर्धमानक !  
वर्धमानक द्वारमपाहणु । ]

( प्रविश्य )

वेद.—अम्मो अप्यमेत्तेओ । [ अम्मो आर्यमैत्रय । ]

नायक—वधमानवफ ।

च.—अम्मो भट्टिदारओ । भट्टिदारअ ! वन्दामि । [ अम्मो भर्तृदा  
रक । भर्तृदारक ! वत्ते । ]

नायक—पादोत्कमानय ।

पञ्चद = शुक्लपक्षाष्टम्या क्षीणचन्द्र तिमिरावकाश = अन्धकारप्रसारस्या  
नम् दत्त्वा अस्त = तिरोहित गत ॥ ३ ॥

अतदधानच दल धावकाश — अतदधानधासौ चन्द्रध ( अस्तगतचन्द्र  
इत्यर्थ ) तस्मात् लघु = प्रातः अवकाश यत्र स तथा ।

पादोदकम् = चरणोदकम् ।

विदूषक—भापने टीक कहा । अन्धकार मानो इम प्रासाद मे उतर रहा हो  
क्योंकि चन्द्रमा के भरत होने मे तमे अवसर उपलब्ध हो गया है ।

नायक—( घूम करके ) यह हम लोगों का घर है । हे वधमानक ! हे वधमानक !  
ये, वर—ए वधमानक हे वधमानक ! दरवाजा खोलो ।

( प्रवेश कर )

वेद—भाय मैत्रय यहाँ है ।

नायक—वधमानक !

१—भर्तृदारक भी यहाँ है । भर्तृदारक मैं आपकी पत्न्या करता हूँ ।

नायक—पैह धान क लिपू जल लाभा ।

विदूषक—सुदुःख मय भणादि । अन्तस्त्रिजमाणचन्द्रलङ्कावभासो  
ओदरदी विभ पासादादो अन्धआरो । [ सुदुःख भवान् भणति । अन्तर्दधा  
नचन्द्रलम्भावकाशोऽन्तरतीव प्रासादादन्धकार । ]

नायक—( परिक्रम्य ) इदमस्मदीय गृहम् । वर्धमानक । वर्धमानक ।

विदूषक—वद्धमाणअ । वद्धमाणअ । दुधार अधावुद । [ वर्धमानक ।  
वर्धमानक द्वारमपावृणु । ]

( प्रविश्य )

चेट—अम्मो अय्यमेत्तेओ । [ अम्मो आर्यमैत्रेय । ]

नायक—वधमानवक ।

चेट—अम्मो भट्टिदारओ । भट्टिदारअ । वन्दामि । [ अम्मो भर्तृदा  
रक । भर्तृदारक । वदे । ]

नायक—पादोदकमानय ।

पक्षचन्द्र = शुक्लपक्षाष्टम्या क्षीणचन्द्र तिमिरावकारा = अंधकारप्रमारस्या  
नम् दत्त्वा अस्त = तिरोहित गत ॥ ३ ॥

अन्तर्दधानचन्द्रलम्भावकाश — अन्तर्दधानधासौ चन्द्रव्य ( अस्तगतचन्द्र  
हृत्पर्य ) तस्मात् लक्ष्म = प्राप्त अवकाश यत्र स तथा ।

पादोदकम् = चरणोदकम् ।

विदूषक—आपने टीका कहा । अंधकार मानो इस प्रासाद से उतर रहा हो  
क्योंकि चन्द्रमा के अस्त होने से उसे अवसर उपलब्ध हो गया है ।

नायक—( घूम करके ) यह हम लोगों का घर है । हे वर्धमानक ! हे वर्धमानक !

विदूषक—ह वर्धमानक हे वर्धमानक ! दरवाजा खोलो ।

( प्रवेश कर )

चे —आय मैत्रेय यहाँ हँ ।

नायक—वर्धमानक !

चेट—भर्तृदारक भी यहाँ ह । भर्तृदारक मैं आपकी पदुमा करता हूँ ।

नायक—पैर धान क लिय जल लाओ ।

चेट — ( परिक्रम्य ) इदं पादोदधं । ( नायकस्य पादौ प्रक्षालयति । )  
[ इदं पादोदकम् । ]

विदूषक — बहूढमाणवथ । मम वि पादं पक्खालोहि । [ वर्धमानक ।  
ममापि पादं प्रक्षालय । ]

चेट — सुहोदेसु पादेसु भूमिण पलोद्विदध्वं । उदधं विणासेहि ।  
अह्व आणेहि । पक्खालोद्वस्सं । ( नाटकेन विदूषकस्य पादौ प्रक्षालयति । )  
[ सुधौतयो पादयोर्भूम्या प्रलोठितव्यम् । उदक विनाशय । अथवानय ।  
प्रक्षालयिष्यामि । ]

विदूषक — ण केवलं दासीएपुत्तेण पादा धोदा, मुहं वि धोदं  
[ न केवल दास्या पुत्रेण पादौ धौतौ, सुखमपि धौतम् । ]

नायक — वयस्य ।

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम् ।  
अदृश्यमाना चपला जरेव या मनुष्यवीर्यं परिभूय वर्धते ॥ ४ ॥

सुधौतयो — सुष्ठु धौतौ सुधौतौ तयो पादयो = चरणयो सुधौतयो (सती)  
भूम्या प्रलोठितव्यम् । उदकम् = जलम् ।

इयमिति—हि = यत नयनावलम्बिनी—नयने अवलम्बते या सा इयं निद्रा  
ललाटदेशात्=मस्तकस्थानात्, माम् उपसर्पति इव=हठात् आगत्य परिभवति इव,  
अदृश्यमाना चपला = कतिक्षणस्थायित्वेन चपला, दुर्विनीता, अजेया इत्यर्थः,

चेट—( धूम करके ) यह चरणोदक है । ( नायक के चरणों को धोता है । )

विदूषक—वर्द्धमानक । मेरा भी पैर प्रक्षालन करो ।

चेट—( चारुदत्त का सेवरु ) अच्छी तरह खुले हुए पैरों को तो भूमिपर ही  
लोटना होगा । पानी छराव करो अथवा लाओ धु, पैरों को धो दें । ( नाटकीय  
ढङ्ग से विदूषक के पैरों को धोता है । )

विदूषक—दासीपुत्र ने केवल पैर ही नहीं धोए, अपितु मुझ भी धो दिया ।

नायक—मित्र ! यह निद्रा भाखों में छटकती हुई ललाट प्रदेश से उत्तरकर  
उसी प्रकार सता रही है जैसे अदृश्य और चपल घुडावस्था मनुष्य की शक्ति को  
परास्त करके बढ़ जाती है ॥ ४ ॥

मैत्रेय ! सुप्यताम् ।

( निष्कान्तमेव । )

( प्रविश्यामरणसमुद्रहस्ता ) ५२

चेटी—अप्यमेत्तेभ । उटठेहि उटठेहि । [ आर्यमैत्रेय ! वसिष्ठोत्तिष्ठ । ]

विदूषकः—भोम्नि । किं एम् । [ भवति । विमेतत् । ]

चेटी—इह सुवर्णभाण्ड सट्टीए सत्तमीए परिवेष्टामि । अट्टमी खु अज्ज । [ इह सुवर्णभाण्ड पट्टपां सत्तम्यां परिवर्तयामि । अट्टमी खल्वय । ]

नायकः—इद तद् वसन्तसेनाया स्यकम् । ०५६११५ २१८५१५

चेटी—आम । मणादु मणादु भट्टिदारओ, गण्हदु त्ति । [ आम । मणनु मणनु भर्तृदारकः गृह्णाति । ]

नायकः—मैत्रेय ! गृह्णाताम् ।

विदूषकः—किं णिमित्त अअ अलङ्कारो अब्बन्तरचउस्साल ण एव्वे सीअदि । [ निमित्तमयमलङ्कारोऽभ्यन्तरचतु शाल न प्रवेशयते । ]

जरा इव = शृद्धावस्था न्व या मनुष्यवीर्यम् = मनुष्यबलम् प्रभावम् वा परिभूय = अभिभूय वर्द्धते एव = वृद्धिं प्राप्नोत्येव ॥ ४ ॥

आभरणसमुद्रहस्ता—आभरणस्य = अलङ्कारस्य समुद्रगमम् चेटी न्ति लोक प्रसिद्धम् तद् हस्ते यस्या गा तथा ।

अभ्यन्तरचतु शालम्—चतसृणाम् शालानाम् ममाहार इति चतु शालम्

( अत ) इ मैत्रेय । मो जाओ । ( चट बाहर चला जाता ह । )

( अलङ्कार को देगी को हाथ में लिये हुए प्रवेश करे )

चेटी—आप मैत्रेय ! उठो उठो ।

विदूषकः—माननीय ! यह क्या है ?

चेटी—यह सुवर्ण भाण्ड है । पट्टी तथा सत्तमी सिंधि इयतीज ज्ञान पर मैं इस परिपतन कर देना चाहूँगी वगैरि आज अष्टमा ह ।

नायकः—क्या यह वसन्तसेना की स्वयंति है ?

चेटी—हां भतदारक ( विदूषक से ) यह कि इस ले लें ।

नायकः—मैत्रेय ! इसे ले लो ।

विदूषकः—क्या हाजि है कि यह अलङ्कार भक्तपुर की चतु गाला में नहीं रक्खा गया ?



नायक—मूर्ख ! बाह्यजनधारितमलङ्कारं गृहजनो न द्रक्ष्यति ।

विदूषक—का गई ! आर्योहि गण्ढामि चोरेहिं गण्ढिअमाणं । [ गति । आनय गृहामि चोरैरुह्यमाणम् । ]

( चेटी दत्त्वा निष्क्रान्ता । )

विदूषक—भो ! किंणिमित्तं सो पावरओ तस्स गणिआपरिआ अस्स दिण्णो । [ भो । किंनिमित्तं स प्रावारकस्तस्मै गणिकापरिव रकाय दत्त । ]

नायक—सानुक्रोशतया ।

विदूषक—इह वि साणुक्रोसदा । [ इहापि सानुक्रोशता । ]

नायक—धयस्य ! मा मैवम् ।

अभ्यन्तरे अभ्यन्तरस्य वा चतु शालम् इति तथा ।

‘बाह्यजन’ इति पदेन ‘गणिका’ ( बसन्तसेना ) ध्वन्यते । ‘गृहजन’ इति पदेन चारुदत्तस्य पत्नी ‘ब्राह्मणी’ आक्षिप्यते । अत एव आह—बाह्यजनेन धारितम् एवभूतम् अलङ्कारं गृहजन = मम भार्या यथा न द्रक्ष्यति, ( अत एव अभ्यन्तरचतु शालम् न प्रवेश्यते इति भाव ) ।

सानुक्रोशतया—अनुक्रोशेन = अनुकम्पया सह वर्तमान इति सानुक्रोशः । तस्य भाव तथा, दयाभावेन इत्यर्थः ।

नायक—मूर्ख ! बाह्यजन ( वेश्या ) के द्वारा धारण किए जानेवाले अलङ्कार को मेरी पत्नी नहीं देख सकेगी ।

विदूषक—दूसरा रास्ता ही क्या है ( अर्थात् दूसरा उपाय क्या है ? ) । लालो, चोरों के द्वारा ग्रहण करने योग्य इस अलङ्कार को ग्रहण करता हूँ ! ( चेटी लामू पण देकर चली जाती है । )

विदूषक—भो ! वह उत्तरीय गणिका के श्रुत्य ( कर्णपूरक ) को क्यों टिया गया ?

नायक—दया भाव से ।

विदूषक—क्या इसमें भी दया भाव है ?

नायक—मित्र ! ऐसा न कहो ।

विदूषक—अह भरिदगाहमो विअ भूमीए पलोठामि । [ अह भरित गर्दम इव भूम्यां प्रलुठामि । ]

नायक—निद्रा मा बाधते । तूष्णीं भव ।

विदूषक—सअदु भव सुहृप्पबोहाअ । जाव अह पि सुविस्स ।  
[ शीतां भवान् सुखप्रबोधाय । यावद्दहमपि स्वप्स्यामि

( द्वावपि स्वपित । )

( तत प्रविशति सज्जलक । )

सज्जलक—एए भो !

कृत्वा शरीरपरिणाहसुखप्रवेश

शिक्षायत्नेन च यत्नेन च कर्ममार्गम् ।

विशा ० ० १

मु० २ १

भरितगर्दम इव—भर सजात अस्य इति भरित भरितरचासौ गर्दमथ इति भरितगर्दम तद्वत् भूम्याम् प्रलुठामि ।

सुखप्रबोधाय = सुसर्वक यथा स्यात् तथा आगरणाय इत्यर्थः ।

भो ! इति विस्मयसूचकमव्ययम् ।

कृत्वैति—( एषोऽहम् ) शिक्षायत्नेन—शिक्षायां यत्नेन = सामर्थ्येन चातुर्येण वा यत्नेन = शरीरयत्नेन च शरीरपरिणाहसुखप्रवेशम्—शरीरस्य = देहस्य परिणाह = विशालता परिणाहो विशालता इत्यमर इति शरीरपरिणाह तस्य सुराप्रवेश सुखेन प्रवेश यस्मात् तम् ( अनायासेन निगमप्रवेशायोम्यम् इत्यर्थः ) एतादृशम् कर्ममार्गम्—कर्मण = चौयकर्मण मार्गम् = सन्धिच्छेदम् सुरमम् वा

विदूषक—म थोस्ता टिण्णुए मधे वी भाति भूमि पर लोट रहा हूँ ।

नायक—नीं मुश सता रही है । चुप रहो ।

विदूषक—आप सु-पूर्वक जानने के लिए सो जाय । तब तक मैं भी सो जाता हूँ ( सोमो सो जाते हैं । )

( तत सज्जलक वा प्रवेश )

नायक—भो !

शिक्षायत्नेन तथा पारिणयिक यत्नेन च द्वारा विशाल शरीर के प्रवेश योग्य सुख बनाकर भूमि पर परिसर्पण करने से कटार पारपमानवाला मैं कसुके से

गच्छामि भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्वो

निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥ ५ ॥

भोः । वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्त्वा प्रविष्टोऽस्मि । यावदि-  
वानी चतुःशालमुपसर्पामि । ( सनिर्वेद विचिन्त्य ) भोः

कामं नीचमिदं वदन्तु विबुधाः सुप्तेषु यद्दत्तं ते  
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभव शौर्यं न कार्कश्यता ।

कृत्वा = विधाय भूमिपरिसर्पणघृष्टपार्श्व — भूमौ = सुरङ्गभूमौ परिसर्पणम् = शक्ति  
सन् अत्रे गमनम् इत्यर्थ, तेन घृष्टौ = प्राप्तवर्षणौ पार्श्वौ यस्य स । निर्मुच्यमान =  
कञ्चुकेन कटुकात् वा हीयमान सन् अतएव जीर्णतनु = जीर्ण = जराजर्जरा  
तनु शरीरम् यस्य स भुजङ्ग इव = सर्प इव गच्छामि = धीर यथा स्यात् तथा  
प्रविशामि इत्यर्थ ॥ ५ ॥

सन्धिं छित्त्वा = छेदनकर्मणा सुरङ्गादिमार्गं सम्पाद्य अहम् प्रविष्टोऽस्मि इति  
भाव । सनिर्वेदम् — निर्वेदेन = दुःखेन सह वर्तमान यथा स्यात् तथा विचिन्त्य =  
चिन्तयित्वा ( सज्जलक आह )

काममिति — यत् = चौर्यादिकम् सुप्तेषु = निद्रावस्था गतेषु जनेषु वर्तते ।  
क्रियते इत्यर्थ, इदम् = कर्म विबुधा = पण्डिता कामम् = यद्यपि, यद्ये-  
नीचम् = निकृष्टम्, पातक वा वदन्ति = कथयन्ति । हि = यत् वि-  
स्तिग्धेषु, विश्रम्भयुक्तेषु वा वञ्चनापरिभव — वचनया = कपटरीत्या,  
अनादर धर्षण वा शौर्यम् = वीरस्य कर्म न = नास्ति । अपितु कार्य

मुक्त जीर्ण शरीरवाले ( वृद्ध ) सर्पं दी-  
( आगे ) जाता हूँ ॥ ५ ॥

भो ! मैंने वृक्षवाटिका वाले द्वार में  
इस समय चतुःशाला में प्रवेश करता

लोहों के सो जाने पर जो ( चौरा )  
निकृष्ट ( कर्म ) कहते हैं । क्योंकि वि-  
जाता है वह वीर कार्य नहीं, अपितु कर्म

गच्छामि भूमिसर्पणघृष्टपाश्वी  
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥ ५ ॥

भोः । वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धिं छित्त्वा प्रविष्टोऽस्मि । यावदि  
दानीं चतुःशालभुपसर्पामि । ( सनिर्वेद विचिन्त्य ) भोः

कामं नीचमिदं वदन्तु विवुधाः सुतेषु यद्वर्तते  
विश्वस्तेषु हि वञ्चनापरिभव शौर्यं न कार्कश्यता ।

कृत्वा = विधाय भूमिसर्पणघृष्टपाश्वी — भूमौ = सुरङ्गभूमौ परिसर्पणम् = शक्ति  
सन् अग्रे गमनम् इत्यर्थः, तेन घृष्टौ = प्राप्तघर्षणौ पाश्वी यस्य स । निर्मुच्यमान =  
कञ्चुकेन कञ्चुकात् वा हीयमान सन् अतएव जीर्णतनु = जीर्णा = जराजर्ण  
तनु शरीरम् यस्य स भुजङ्ग इव = सर्प इव गच्छामि = धीर यथा स्यात् त  
प्रविशामि इत्यर्थः ॥ ५ ॥

सन्धिं छित्त्वा = छेदनकर्मणा सुरङ्गादिमार्गं सम्पाद्य अहम् प्रविष्टोऽस्मि इ  
भाव । सनिर्वेदम्—निर्वेदेन = दुःखेन सह वर्तमान यथा स्यात् तथा विचिन्त्य =  
चिन्तयित्वा ( सञ्जलक आह )

काममिति—यत् = चौर्यादिकम् गुप्तेषु = निद्रावस्था गतेषु जनेषु वर्तते =  
क्रियते इत्यर्थः, इदम् = कर्म विवुधा = पण्डिता कामम् = यथापि, यद्येष्ट  
नीचम् = निकृष्टम्, पातक वा वदन्ति = कथयन्ति । हि = यत् विश्वस्तेषु =  
स्निग्धेषु, विश्रम्भयुक्तेषु वा वञ्चनापरिभव—वचनव्या = कपटरीत्या, परिभव =  
अनादर घर्षण वा शौर्यम् = वीरस्य कर्म न = नास्ति । अपितु कार्कश्यम् = क्रू

मुक्त जीर्ण शरीरवाले ( वृद्ध ) सर्प की भांति ( धीरे-धीरे ) प्रवेश करता  
( आगे ) जाता है ॥ ५ ॥

भो ! मैंने वृक्षवाटिका वाले द्वार में सुरङ्ग बनाकर प्रवेश किया है । तब त  
इस समय चतुःशाला ने प्रवेश करता है । ( दुःखपूर्वक सोचकर ) भो !—

लोगों के सो जाने पर जो ( चौरादि कर्म ) किया जाता है, उसे पण्डित लो  
निकृष्ट ( कर्म ) कहते हैं । क्योंकि विश्वस्तजन का छल द्वारा जो अपमान कि  
जाता है वह वीर-कार्य नहीं, अपितु क्रूरकर्म ही कहा जाता है । तथापि निन्दनी

स्वाधीना ध्वनीयतापि तु वर यद्वा न सधाजलि

मागश्च नरद्रुमात्तिकवधे पूर्य वृता द्रौणिना ॥ १ ॥

( विचि-य )

*drumati tikadi*  
*242*

लुब्धाऽथयान् माधुजनाधमानी वणिक् म्यवृत्तावतिककशाश्च ।

यन्मम्य गह यदि नाम लप्स्ये भवामि दु व्यापहता न चित्ते ॥८॥

क्य एव भवति । ( तथापि ) ध्वनीयतापि = निन्दा अपि स्वाधीना = स्वानन्वय  
गुणयोगिना वरम् = मनाक् प्रिया भवति तु = किन्तु यद् मेधाजलि = दास्य  
भावन भवार्थं इत्याचलि प्रणामायाचारस्तु न वर म्यान् = मनागपि न  
इयते । अयान परमाभ्योपजीवनापेक्षया चौयादिनीचकमजीवन स्वातन्त्र्यण  
प्रशस्तम् इति आशयः । पृथम् = द्वापरयुग एव महाभारतकाल वा एष  
माग = कथादिनिन्त्यकममाग नरद्रुमात्तिकवध मत्त भव इति मौक्तिक  
नरद्राणां मौक्तिक अथवा नन्द्राश्च ते मौक्तिकाश्च तेषाम् वध तस्मिन् अयात्  
विश्वस्तिद्राकाल वृष्टगुम्नाम्निवृषाणाम् वध एव द्रौणिना द्रौणपुत्रेण अथ  
गाम्ना कृत = अनुमृत आचरितः । ( अतएव अहमपि चौर्यकर्म करिष्य  
मौक्तिकप्रसूतिमि आचरितवान् ) ॥ ६ ॥

लुब्ध इति । य लुब्ध = परद्रव्यलोभी अथवान् = धनवान् अप च माधु  
जनाधमानी यश्च वणिक् = व्यवसायी स्ववृत्तावतिककशाश्च—स्ववृत्तौ = अयविक्रय  
व्यापार अतिककशाश्च = अमाधुम्बान् कर्णोरथ तस्य = एतयो द्वयो एततरस्य  
इयस्य गहम् = गृहम् यदि नाम लप्स्ये = यत्नि वा प्रविशामि तदा चित्त =  
मनसि दुःखोपहतो न भवामि ॥ ७ ॥

मथा अघान चौर्याणि वृत्ति, मथा क निमित्त हाय जावन की अपचा कुछ  
अपचा ही ह । अनानकाल ( महाभारतकाल ) में द्राणपुत्र अश्वधामा न  
विश्वस्त एव निद्रामान द्रापनी क पाचों पुरों क वध करान म हमी क्रूरकम का  
अनुसरण किया था ॥ ६ ॥

( चौर्याणि विषय में विशेष चिन्ता क के )

यदि मैं लामी धनी अथवा निष्ठजन क हूमी ( व्यक्ति ) या निज स्वधत्ताय में  
कगार ( अमाधु ) वणिक् क घर में प्रवेश करता हूँ तो अपने मन में कभी भा दुःखी  
महीं होऊँगा ॥ ७ ॥

यद्वा तद्वा भवतु । किं वा न कारयति मन्मथः । यावदारभे कर्म । भोः ।

देशः को नु जलावसेकशिथिलश्छेदादशब्दो भवेत्

भित्तीनां क नु दर्शितान्तरसुख सन्धिः करालो भवेत् ।

क्षारक्षीणतया चलेष्टककृशं हर्म्यं क जीर्णं भवेत्

कुत्र स्त्रीजनदर्शनं च न भवेत् स्वन्तश्च यत्नो भवेत् ॥८॥

(परिक्रम्य) इयं वास्तुविभागक्रिया । सोपस्नेहृतया गृहविशिष्ट-

देश इति—भित्तीनाम् = प्राकाराणाम् क नु देश = स्थानम् जलावसेकशि-

थिल—जलानाम् = वृष्ट्यादिजलानाम् अवसेक = पतनम् तेन शिथिल = कोमल-

त्वेन छेदात् सुरङ्गादिनिर्माणसमये अशब्द = खटखटाशब्दरहित भवेत्,

क नु सन्धि = रन्ध्रम् ( संधि इति लोकभाषायाम् ) दर्शितान्तरसुख—दर्शितम्

अन्तरम् अभ्यन्तर येन, तादृशश्च सुखकरश्च सन् कराल = अभूतपूर्वदर्शनीयत्वेन

निशालः, भयङ्करो वा भवेत् । क्षारक्षीणतया—क्षारेण = क्षारमृदा, लवणैश्च वा

क्षीणतया = क्षीणताहेतोः, शिथिलतया वा चलेष्टककृशम्—चलम् इष्टकम्, तेन

कृशम् = हासप्राप्तम् अर्थात् कृशश्च क्षीणश्च एवभूतं हर्म्यम् = भवनम् क =

कुत्र जीर्णम् भवेत् = भग्नप्रायम् अतएव सुखपूर्वकं छेदनयोग्यं च भवेत्, कुत्र

यनभिप्रेतम् स्त्रीजनदर्शनम्—स्त्रीजनानाम् दर्शनम् = साक्षात्कारं च न भवेत् तथा

यत्नो यत्न = चौर्यरूपोपायः, स्वन्तः = फलप्रदः भवेत् ॥ ८ ॥

वास्तुविभागक्रिया—'वास्तु' इति पदेन वास्तुगृहं परानुश्रयते अतः वास्तुन =

जो कुछ भी हो । कामदेव मनुष्य से क्या नहीं करा लेता ? तब तक मैं अपना कार्य आरम्भ करता हूँ ।

सज्जलक—यहाँ दीवार का कौन स्थान वर्षा आदि जल से नरम हो गया है जिससे छेदन के समय शब्द न हो सके, अथवा कहीं पर छेद ( सुरङ्ग ) विशाल होगा जिसके द्वारा भीतर की सारी चीजें सरलता से दिखाई पड़े भवन की किस स्थान पर भित्ति जीर्ण एवं चार ( लौना ) लगाने के कारण नष्ट होकर शिथिल पड़ गई है, कहीं पर स्त्रियाँ देख न सकेंगी । और ( इसी बीच में ) मेरा यत्न भी सफल हो जाय ॥ ८ ॥

( घूमकर ) यहाँ भूकान की दर्ज है ( रक्षों के या ईंटों के बीच का अवकाश ) ।

इवाय भवनविन्यास । इह तावत् प्रवेशावकाशं करिष्ये । भो ! कीदृश  
इदानीं सन्धिच्छेदं कर्तव्यं स्यात् ।

३५७

सिंहाक्रान्त पूर्णचन्द्र भयास्य चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्र त्रिकोणम् ।  
सन्धिच्छेदः पीठिका वा गजास्य मस्मत्पक्ष्या विस्मितास्ते कथं स्युः ॥९॥

५१०

भवतु, सिंहाक्रान्तमेव च्छेदयिष्ये ।

विदूषक—भो ! जागति खु भवं, पहि । [ भो ! जागति खु

भवात्, न हि । ]

नायक—किमर्थम् ।

विदूषक—अहं खु दाव कत्तव्यकरत्थीकिदसङ्केदो विज सक्किअस

धास्तुगृहस्य विभागक्रिया इयमत्र दृश्यते इति भावः । सौपत्न्येहतसा = स्निग्ध  
तया इत्यर्थः । भवनविन्यासः = भवनस्य विन्यासः = सन्निवेशः गृहविशिष्ट इव  
विशिष्ट गृह यत्र तादृश अपि सूचयति इति भावः ।

सिंहेति—सिंहाक्रान्तः पूर्णचन्द्र भयास्य चन्द्रार्धं वा व्याघ्रवक्त्र त्रिकोण  
पीठिका गजास्यम् इति वा ( कतम ) सन्धिच्छेदः स्यात् कथं वा अस्म  
त्पक्ष्या तै ( जना ) विस्मिताश्च स्युः ( अर्थात् सुरभ्रादिमार्गनिर्माणविधौ मम  
कर्मकौशलदर्शनात् आश्चर्यान्विता वा स्युः । ) ॥ ९ ॥

कर्तव्यकरत्थीकृतसकेतः—कर्तव्यं करोतीति कर्तव्यकर तस्य स्त्री तथा कृत

नमी के कारण इस घर का बनाव कुछ विशेष प्रकार का है । यहीं पर प्रवेश के  
उपयुक्त सुरङ्ग बनाऊगा । भो ! यहाँ कैसा सुरङ्ग बनाना उचित होगा ?

सिंह की उछाल के समान वक्रगति की या पूर्णचन्द्राकार जैसी मकर के  
मुख की तरह की अथवा अघचन्द्राकार सरीसृप; व्याघ्र के मुख की भाँति अथवा  
सिकोनी चौकोनी ( पीठिका ) या गज के मुख की भाँति घाली सुरङ्ग हो  
जिससे चौराहा में दूध लागे ( भरे सुरङ्ग-निर्माण की कला से ) आश्चर्यित  
हो जायें ॥ ९ ॥

अच्छा सिंहाक्रान्त नामक सुरङ्ग का ही निर्माण करूँगा ।

विदूषक—भो ! क्या आप जाग रहे हैं या नहीं ?

नायक—किमर्थम् ?

विदूषक—न मजदूर की या क द्वारा मर्कट-स्थल पर बुलाये गये बौद्ध संन्यासी

मणओ णिहं ण लभामि । वाम खुमे अक्खि फन्देदि । चोरो सन्धि  
छिन्ददी विअ पेक्खामि । जइ ईदिसी अवत्था अत्थाण, जादीए  
दरिहो एव्व होमि । [ अह खलु तावत् कर्तव्यकरस्त्रीकृतसङ्केत इव शाक्य-  
श्रमणको निद्रा न लभे । वामं खलु मेऽक्षि, स्पन्दते । चोर सन्धि छिनत्तीव  
पश्यामि । यदीदृश्यवस्थाऽर्याना, जात्या दरिद्र एव भवामि । ]

नायक—मूर्ख ! धिक् त्वाम् ! दारिद्र्यमभिलषसि ।

सज्जलक—अथ केनेदानी सन्धिच्छेदमार्गं सूचयितव्यं स्यात् ।

नन्विद दिवा ब्रह्मसूत्र रात्रौ कर्मसूत्र भविष्यति ।

अथास्य भित्तिषु मया निशि पाटितासु

छेदात् समासु सकृदर्पितकाकलीषु ।

काल्यं विषादविमुख. प्रतिवेशवर्गं

दोषांश्च मे वदतु कर्मसु कौशलं च ॥ १० ॥

तादृशं संकेत = समयनिर्देश यस्य यस्मै वा तथा । शाक्यश्रमण = बौद्धश्रमणक ।  
सूचयितव्यं = परिमातव्यं स्यात् । ब्रह्मसूत्रम् = उपवीतम् ।

अद्येति—अथ अस्य = गृहस्य भित्तिषु निशि = रात्रौ मया पाटितासु,

छेदात् = छेदं प्राप्य अपि सकृदर्पितकाकलीषु—सकृत् अर्पिता काकली यत्र तासु  
अर्थात् सकृत् काकलीयन्त्रेण आहतासु अतश्च, समासु = रम्यासु सतीषु  
काल्यम् = कल्यमित्यर्थं । विषादविमुख—विषादेन विमुख = विवर्णमुख, प्रति-  
वेशवर्गं = शत्रुवेश्यावर्गं मे = मम दोषान् वदतु कर्मसु कौशलं च वदतु ॥ १० ॥

की भांति निद्रा का आनन्द नहीं ले रहा हूँ और मेरी चाई आँख फडक रही है ।  
मुझे ऐसा लगता है कि चोर ( मेरे घर में ) सुरङ्ग बना रहा हो । यदि धन की  
यही हालत है, तब तो मैं जन्मना या स्वभावतः दरिद्र ही होना चाहूँगा ।

नायक—मूर्ख ! तुम्हें धिक्कार है । क्यों तुम दरिद्रता को पसन्द करते हो ?

सज्जलक—इस समय मैं किससे सुरङ्गमार्ग की माप करूँगा ! अथवा यह  
ब्रह्मसूत्र रात्रि में कर्मसूत्र होगा ( अर्थात् यज्ञोपवीत द्वारा माप करूँगा ) ।

आज रात्रि में इस घर के दिवाल में छेद कर दिया, काकलीयन्त्र ( रानती )  
के एक ही वार के आघात से यह मनोरम सुरङ्ग बन गया । प्रातःकाल प्रसन्न  
होकर पडासी लोग मेरे दोषों का तो वखान करेंगे ही साथ ही साथ मेरे कार्य-  
कौशल की भी प्रशंसा करेंगे ॥ १० ॥



नमः खरपटाय । नमो रात्रिगोचरेभ्यो देवेभ्यः । ( तथा करोति । )  
हन्त अवसित कर्म । प्रविशामस्तावत् । ( प्रविश्य ) अये । खलति  
दीप । अपसुरामि तावत् । धिक्, सज्जलक खल्यहम् ।

माज्जारः प्लवने वृकोऽपसरणे श्येनो गृहालोकने  
निद्रा सुप्तमनुष्यवीयतुलने ससर्पणे पन्नगः ।

माया घणशरीरमेदकरणे घाग् देशभाषान्तरे

दीपो रात्रिषु सङ्कटे च तिमिर वायु स्यले नौजले ॥ ११ ॥

हन्त इति ह्ये । कर्म = छेदनकर्म अवसितम् = समाप्तम् । अतएव गृहे  
प्रविशाम इत्ययम् ।

माज्जार इति—( अहम् ) प्लवने = उत्प्लुत्य पलायनविषये माज्जार =  
विडालगुप्त्य श्लोत्रविडाल माज्जार इत्यमरः अपसरणे = द्रुतगमने वृक गृहाव  
लोकने = गृहस्थवस्तुदर्शनविषय श्येन ( बाजपक्षी ) तद्वत् खरदृष्टि सुप्त-  
मनुष्यवीयतुलने—सुप्तमनुष्याणाम् वीयम् तस्य तुलने = परिभाषने निद्रा यत  
सा हि मनुष्यवीर्यम् कीटक इति जानाति इति भावः । देशभाषान्तरे = विभिन्न  
देशभाषाविषये वाक = वाग्देवी सरस्वती भवामि ( तथा ) अह रात्रिषु =  
रजनीषु दीपः = आलोकः अर्थात् दीपतुल्य वस्तुदर्शनसमर्थः सङ्कटे = विप-  
त्काले तिमिरम् = लौकिकस्पृहायां तिमिरान्तामर्थात् अन्धकार इव स्यले =  
भूमौ वायु = तत्तुल्य सर्वत्रग दक्ष दक्ष जले च नौ = नौका इव भवामि ॥११॥

खरपट को नमस्कार । रात्रि के देवता को नमस्कार । ( बैसा घट करता है । )  
वाह ! छेदन कर्म समाप्त हो गया । तब प्रवेश करता हूँ । ( प्रवेश करके ) अरे !  
दीपक जल रहा है । तब तक हट जाता हूँ । मुझे विश्कार है मैं सचमुच में  
सज्जलक हूँ ।

मैं कूदकर भागने में माज्जार, द्रुत गमन में वृक गृह के वस्तुओं को अलोकन  
करने में बाज सुप्तमनुष्य के वीय ( बल ) को मापने में निद्रादेवी चलने में  
सर्प के तुल्य स्थूल शरीर के विरलेपण करन में माया, देश देशान्तर की विभिन्न  
भाषा क विषय में त्रियांकी ( सरस्वती ) रात्रि में दीप आपत्काल में अन्धकार  
तुल्य ( अन्धश्य ) स्थूल ( पृथ्वी ) पर वायु और जल में नौका की भांति हूँ ॥११॥

( सर्वतो विलोक्य ) आगन्तुकत्वादविदितसमृद्धिविस्तर केवलं भवन-  
प्रत्ययादिह प्रविष्टोऽस्मि । न चेदानीं कञ्चित् परिच्छदविशेषं पश्यामि ।  
किन्तु खलु, दरिद्र एवायम् । उताहो अयं सयमननिरर्थक द्रष्टव्य  
'धारयति । अथवा, अभिजातोऽयं भवनविन्यासः । उपमुक्तप्रनष्टविभवे-  
नानेन भवितव्यम् ।

आ०, १२१०० ?

३३  
३३३३

तथा विभवमन्दोऽपि जन्मभूमिव्यपेक्षया । ५५१२५  
गृहं विक्रयकालेऽपि नीलस्नेहेन रक्षति ॥ १२ ॥ ११७

आगन्तुकत्वात् = वैदेशिकत्वात् अविदितसमृद्धिविस्तर — अविदित =  
अज्ञात समृद्धिविस्तर = ऐश्वर्यप्रसर येन । किन्तु भवनप्रत्ययात् = रमणीय-  
भवनदर्शनात् अथ ईप्सितम्, अस्ति इति हेतो प्रविष्टोऽस्मि । सयमननिरर्थ-  
कम्—सयमनेन = भूमौ स्थापनादिना निरर्थकम् = निष्प्रयोजनम् अभिजात =  
मनोरम उपमुक्तप्रनष्टविभव—पूर्वमुपमुक्त पश्चात् प्रनष्ट इति उपमुक्तप्रनष्ट  
विभवः यस्य तादृशेन भवितव्यमित्यर्थ ।

तथेति—तथा = अनेन नष्टविभवप्रकारेण अयं गृहस्वामी विभवमन्द अपि-  
क्षीणविभवोऽपि विक्रयकाले = दारिद्र्यात् गृहविक्रयकाले समुपस्थितोऽपि जन्मभूमि-  
व्यपेक्षया—स्वकीयजन्मभूमौ व्यपेक्षया = अनुरागेण इत्यर्थ । गृह नीलस्नेहेन =  
गाढस्नेहेन 'नीलीराग स्थिरप्रेमा' इति यादव, रक्षति ॥ १२ ॥

( चारों ओर देखकर ) आगन्तुक होने के नाते मुझे इस घर की सम्पत्ति के  
विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है । केवल सुन्दर भवन को देखकर मैंने प्रवेश  
किया है । परन्तु कोई विशेष पोशाक नहीं देख रहा हूँ । क्या यह सचमुच में  
दरिद्र है ? अथवा यह सयम के द्वारा ( बहुमूल्यवान् वस्तुओं को भूमि में गाड़कर )  
निरर्थक वस्तु को ही बाहर रखकर रक्षा करता है । अथवा यह रमणीय भवन  
विन्यास, इस बात का साक्षी है कि यह ( व्यक्ति ) किसी समय धन का उपभोग  
कर चुका है, बाद में विभवहीन हो गया है ।

इस प्रकार निर्धन होकर भी यह गृहस्वामी केवल जन्मभूमि की ममता से  
इस घर की रक्षा कर रहा है अन्यथा ऐसी हालत में उसे यह घर बेच देना  
चाहिये था ॥ १२ ॥

भवतु पर्यामस्तावत् । अथवा, न खलु मे तुल्यावस्थ कुलपुत्र  
पीडयितव्य । गच्छामि तावत् ।

विदूषक—भो ! गण्ड एव सुवर्णभाण्डम् । [ भो ! गृहणैतत् सुवर्ण  
भाण्डम् । ]

सज्जलक—कथं सुवर्णभाण्डमित्याह । किं मा दृष्ट्वाऽभिभाषते ।  
आहोस्वित् सत्त्वलाघवात् स्थप्नायते । भवतु पर्यामस्तावत् । ( दृष्ट्वा ;  
भूतार्थं सुप्र एवायम् । तथाहि, ८८५० २१५५ मनःकला ८  
मनःशिवम् )

निश्वासोऽस्य न शक्तिः न विषमस्तुल्यान्तर जायते  
गात्र सन्धिषु दीर्घतामुपगत शय्याप्रमाणाधिकम् । ५० ८  
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न चपल पक्षुमान्तर जायते ५८ मे ५

सत्त्वलाघवात्—सत्त्वस्य = मनसः लाघवम् दौर्बल्यम् तस्मात् क्षीणबलत्वात्  
इत्यर्थः ।

निश्वास इति—अस्य निश्वास न शक्तिः = न शक्त्यान्वयकर शक्ताहेतु  
( जागरणस्यति माध ) न विषम परन्तु तुल्यान्तर = तुल्यरूप यथा स्यात्  
तथा जायते गात्र सन्धिषु = जान्वादिसन्धिषु दीर्घतामुपगतम् = सुप्रसारणात्  
दीर्घं सत् । शय्याप्रमाणाधिकम्—शय्याया प्रमाणम् इति शय्याप्रमाणम् तस्मात्  
अधिकम् = बहिर्भूतम् च प्रतीयते दृष्टि = नेत्रम् गाढम् = अत्यन्तम् निमीलिता =

अथवा तब तक देखता हूँ । अथवा मेरे समान वरिष्ठ इस कुलीन व्यक्ति को  
कष्ट नहीं देगा । तब मैं जाता हूँ ।

विदूषक—भो ! इस सुवर्णभाण्ड को ग्रहण करो ।

सज्जलक—धर्यो सुवर्णभाण्ड की ( चर्चा ) करता है ? क्या मुझे देखकर  
कड़ रहा है ? अथवा दुर्बल मन के कारण स्वप्न देख रहा है अथवा तब तक  
देखता हूँ । ( देखकर ) यह सचमुच मैं सोया हूँ ।

धर्योकि—इसका श्वास निश्चिन्त होकर सम एव सुवर्णरूप से चल रहा है ।  
शरीर की सन्धिषु में फैलाव के कारण दीर्घता भा गई है एव शय्या के प्रमाण  
से वे अधिक लम्बी हो गई हैं । आँखें बन्द हैं एव पलकें भी निश्चल हैं । यदि

दीपं त्रैव न मर्षयेदभिमुखः स्थाल्लक्षसुप्तो यदि ॥ १३ ॥

क नु खलु तत् । अये जर्जरप्रावरणैकदेशे दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपं  
दृश्यते । सुपरिगृहीतमनेन । अयमत्र प्राप्तकालः । इमे मया गृहीताः  
शलभाः । दीपनिर्वापणार्थमेकं मुञ्चामि । ( अमरकरण्डकादेक मुञ्चति । )  
अये एष दीप निर्वाप्य पतति ।

१ ५१

विदूषक—अविहा णिष्वाविदो दीवो दाणिं । मुसिदो म्हि । भो  
चारुदत्त ! गण्ह एदं सुवण्णालङ्कार । अहं खु भीदीए उप्पहप्पवुत्तो  
विअ वणिजो णिहं ण लभामि । मम बम्हत्तणेण साविदो सि, जइ ण  
गण्हसि । [ अविहा निर्वापितो दीप इदानीम् । मुषितोऽस्मि । भोधारुदत्त ।

सम्पुटिता पद्मान्तरम् = नेत्रलोमस्थानम् चपल न जायते, यदि एष लक्ष-  
सुप्त = व्याजसुप्त भवेत् तदा अभिमुखम् = पुरोवर्तमानम् स दीपम् न  
मर्षयेत् = न सहेत ( एतेन गाढा निद्रा व्यज्यते । अत अनुमीयते यत् अयं  
सत्यमेव सुप्त ॥ १३ ॥

जर्जरप्रावरणैकदेशे—जर्जर' = जीर्ण प्रावरणम् = आच्छादनवस्त्रं तस्य एक-  
देश तस्मिन् । दीपप्रभाव्यक्तीकृतरूपम्—दीप्तस्य प्रभया व्यक्तीकृत रूप यस्य  
तत् । प्राप्तकाल = अपहरणस्य समुचितसमय ।

मुषित अस्मि—अहम् हृतसुवर्णभाण्ड अस्मि । भीत्या—भयेन उत्पथप्रवृत्त =  
विमार्गो प्रवृत्त । अर्थात् वाणिज्यमार्गमुल्लङ्घ्य गमनशील इत्यर्थः ।

यह सोने का बहाना कर रहा होता तो सामने दीपक की रोशनी को बर्दास्त  
न करता ( अर्थात् दीपक की आर मुह करके न सोता ) ॥ १३ ॥

बह ( सुवर्णभाण्ड ) कहाँ है ? अये ! पुराने बस्त्र के भीतर दीप के प्रकाश में  
इसका रूप दिखाई पड़ रहा है । इसने अच्छी तरह पकड़ लिया है । यही उपयुक्त  
समय है । मैंने इन शलभों को पकड़ लिया है । दीपक बुझाने के लिए एक को  
छोड़ देता हूँ । ( अमर-पेटिका से एक को छोड़ता है । ) अये ! यह दीप को बुझाकर  
गिर जाता है ( अर्थात् स्वयं नष्ट हो जाता है ) ।

विदूषक—आह ! खेद की बात है कि इस समय दीपक बुझा दिया गया ।  
मैं बर्बाद हो गया । भो ! चारुदत्त ! इस सुवर्णालङ्कार को ग्रहण करो । मुझे

गृहाणेम सुवर्णालङ्कारम् । अहं खलु भीत्योत्पथप्रवृत्त इव वणिग् निद्रा न लभे ।  
मम प्रभ्रत्वेन शापितोऽसि यदि न गृह्णासि । ]

सञ्जलक — किमत्र शापथपरिग्रहेण । एष प्रतिगृह्णामि । ( गृह्णाति । )

विदूषक — ( दत्त्वा ) अहं विक्रिणिदभण्डञ्चो विञ्ज वणिजञ्चो सुह  
सइस्स । [ अहं विक्रीतभाण्डक इव वणिक् सुह शयिष्य । ]

सञ्जलक — सुखं स्यपिहि महाप्राज्ञेण ! ( विचिंत्य ) भो ! प्राज्ञेण  
विश्वासाद् दीयमानं मया हतव्यमासीत् ।

धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेदं च यौवनम् ।

यदिदं दारुणं कर्म निन्दामि च करोमि च ॥ १४ ॥

शापथपरिग्रहेण = शापथस्य परिग्रहेण किं त्वात् इत्यथ ।

विक्रीतभाण्डक — विक्रीत भाण्डक येन स । शयिष्य = निद्रां लभे ।

विगिति — दारिद्र्यम् = अकिञ्चनत्वम् धिक् = धिक्कार अस्तु अनिर्वेदम् —  
अविद्यमानं निर्वेदं = तृप्तिं यस्मिन् भोगेन अतृप्तम् इत्यथ यौवनम् = मम यौवनम्  
खलु = निश्चयेन ( धिगस्तु ) यत् = यस्मात् कारणात् ( अहम् ) इदम् दारुणम् =  
चौरूपनिन्दितम् कर्म निन्दामि च ( तथापि ) करोमि च ॥ १४ ॥

इसी प्रकार भय से नींद आ रही जैसे रास्ता भूले हुए व्यापारी को । यदि तुम  
नहीं लेते हो तो मैं प्राज्ञ के नाते तुम्हें शाप दे दूँगा ।

सञ्जलक — इसमें शाप लेने की आवश्यकता ही क्या है । मैं इसे ग्रहण करता  
हूँ । ( ग्रहण करता है । )

विदूषक — ( देखकर ) मैं भाण्ड की विक्री करनेवाले वणिक् की भांति सुख  
पूयक सो रहा हूँ ।

सञ्जलक — भो ! महाप्राज्ञेण ! सुखपूर्वक सोभो ! ( चिन्ता करके ) भो ! मैंने  
चुरा लिया जो प्राज्ञ के विश्वास पर दिया गया था ( अर्थात् यह चारुदत्त को  
दिया जा रहा है उसे मैंने हरण किया ) ।

मेरी दरिद्रता को धिक्कार है तथा इस यौवन को धिक्कार है जो प्रमथित है  
रहित ( अतृप्त ) है । क्योंकि मैं पुरे काय की मित्रा भी कर रहा हूँ और फिर भी  
इसे कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

१११५।

( नेपथ्ये पठहशब्दं क्रियते । )

सज्जलक — ( कर्णं दत्त्वा ) अये प्रभातसमयः संवृत्तः । अपसरामि तावत् ।

( निष्क्रान्त सज्जलक । )

( प्रविश्य )

चेटी—( साकन्दम् ) अथ्यमेत्तेअ । अम्हाणं रुक्खवाडिआपक्ख-  
दुवाले सन्धि छिन्दिअ चोरो पविट्ठो । [ आर्यमैत्रेय ! अस्माक वृक्षवाटिका-  
पक्षद्वारे सन्धि छित्त्वा चोर प्रविष्ट । ]

विदूषक—( सहसोत्थाय ) किं भणादि होदी । [ किं भणति भवती । ]

( चेटी रुक्खवाडिअति पठति । )

विदूषक—चोरं छिन्दिअ सन्धी पविट्ठो । [ चोर छित्त्वा सन्धि प्रविष्ट । ]

चेटी—हदास ! सन्धि छिन्दिअ चोरो पविट्ठो । [ हताश । सन्धि  
छित्त्वा चोर प्रविष्ट । ]

विदूषक—आअच्छ णं दसेहि । [ आगच्छ ननु दर्शय । ]

चेटी—[ परिक्रम्य ) एदं । [ एतत् । ]

( नेपथ्य में नगाड़े का शब्द होता है । )

सज्जलक—( ध्यान देकर ) अरे ! सबेरा हो गया । तब मैं भाग जाता हूँ ।  
( सज्जलक निकल जाता है ) ।

( प्रवेश कर )

चेटी—( जोर से चिल्लाकर ) आर्य मैत्रेय ! मेरी वृक्षवाटिका के पक्ष द्वार में  
चोर सुरङ्ग बनाकर घुस गया ।

विदूषक—( सहसा उठकर ) भाप क्या कह रही हैं ?

( चेटी फिर उसी को दुहराती है )

विदूषक—सुरङ्ग बनाकर चोर घुस गया ।

चेटी—हाय ! सुरङ्ग बनाकर चोर घुस गया ।

विदूषक—आइये और मुझे दिखाइये ।

चेटी—( घूमकर ) यह है ।

विदूषक.—अविहा दासीपुत्रेण कुक्कुरेण पवेशो कियो । भोदि ।  
आअच्छ, चारुदत्तस्स पिअ णिवेदेमि । [ अविहा दास्या पुत्रेण कुक्कुरेण  
प्रवेश कृत । भवति । आगच्छ चारुदत्तस्य प्रिय निवेदयामि ।

( उमाव्रुपगम्य )

भो चारुदत्त ! पिअ दे णिवेदेमि । [भीष्मारुदत्त ! प्रिय ते निवेदयामि ।]

नायक —( बुद्ध्वा ) किं मे प्रियम् । ननु वसन्तसेना प्राप्ता ।

विदूषक —ण खु वसन्तसेणा, वसन्तसेणो पत्तो । [ न खलु वसन्त-  
सेना वसन्तसेन प्राप्त । ]

नायक —रदनिके ! किमेतत् ।

चेटी—मट्टिदारअ । अम्हाण रुक्खवाडिआपक्खदुधारे सन्धि  
छिन्दिअ चोरो पविट्ठो । [ मर्तुदारक ! अस्माक वृक्षवाटिकापक्षद्वारे सन्धि  
छित्त्वा चोर प्रविष्ट । ]

नायक —किं चोर प्रविष्ट ।

विदूषक—भो थअस्स ! सब्बहा तुव भणासि, मुक्खो मेत्तेओ  
अपण्डितो मेत्तेओ ति । ण मए सोभण किद त [सुवर्णभाण्डक तथ  
हृत्ये समप्पअ तेण । [ भो वयस्य ! सर्वथा त्व भणसि मूर्खो मैत्रेयोऽपण्डितो  
मैत्रेय इति । ननु मया शोभन कृत तत् सुवर्णभाण्डक तथ हस्ते समर्पयता । ]

विदूषक—आह ! दासीपुत्र कुक्कुर ने प्रवेश किया था । चलो चलो और यह  
प्रिय सन्देश आय चारुदत्त को निवेदन कर दें । ( दोनों समीप जाकर ) भो  
चारुदत्त ! मैं आपसे कुछ प्रिय संदेश निवेदन करना चाहूँगा ।

नायक—( घठकर ) मेरे लिए क्या प्रिय संदेश है ? क्या वास्तव में वसन्त  
सेना आ गई ?

विदूषक—वसन्त सेना नहीं बल्कि वसन्तसेन आया है ।

नायक—रदनिके ! यह क्या है ?

चेटी—महाशय ! मेरी वृक्षवाटिका के पक्षद्वार में चोर सुरङ्ग बनाकर घुस गया ।

नायक—क्या चोर घुस गया ?

विदूषक—भो मित्र ! आप हमेशा कहा करते थे कि मैत्रेय मूर्ख है अपण्डित  
है । परन्तु मैंने अच्छा किया कि सुवर्णभाण्ड आपके हाथ में दे दिया ।

नायक — कि भवता दत्तम् ।

विदूषक — अहं । [ अथ किम् । ]

नायक — कस्यां वेलायाम् ।

विदूषक — अद्वरत्ते । [ अर्घरात्रे । ]

नायक — किमर्घरात्रे । बाढ दत्तम् ।

विदूषक — भो चारुदत्त ! ज वेलं पडिबुद्धो आसि, तस्सि वेलाअ खु दिण्णं । [ भोश्चारुदत्त ! यस्या वेलाया प्रतिबुद्ध आसी, तस्या वेलाया खलु दत्तम् । ]

नायक — हन्त हत सुवर्णभाण्डकम् ।

विदूषक — दाणिं मे हत्थे पडिच्छिदु अत्तभवं । [ इदानीं मम हस्ते प्रयच्छस्वन्नभवान् । ]

नायक — ( आत्मगतम् ) तस्मै ह्ये तुलया निर्वोप्यति

क श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तुलयिष्यति ।

शङ्कनीया हि दोषेषु निष्प्रभावा दरिद्रता ॥ १५ ॥

क इति—क = लोक भूत = सत्य. अर्थ = चौरकर्तृकस्वर्णभाण्डापहरण रूपा घटना तम् श्रद्धास्यति = विश्वसिष्यति ( अपितु ) सर्व जन माम् = दरिद्र चारुदत्तम् तुलयिष्यति = शठो वा तस्करो वा इति तुलया निर्णोप्यति, अर्थात् यथार्थज्ञानान्तेऽविश्वासतया स्वयमेवापहतमिति अपवादोत्पादनेन तुलवत् लघु करिष्यति इत्याशय । हि = यत मयि दोषे असति अपि दोषेषु = दोषविषयेषु

नायक—क्या आपने दे दिया ?

विदूषक—और क्या ?

नायक— किस समय ?

विदूषक— ओधी रात को ।

नायक— क्या आधी रात में ? क्या आपने मचमुच मुझे दे दिया ?

विदूषक— भो चारुदत्त ! जिस समय आप जगे हुए थे, उसी समय दिया था ।

नायक— हाय ! सुवर्णभाण्ड की चोरी हो गई ।

विदूषक— इस समय आप मेरे हाथ में हैं ।

नायक— ( मन में ) इस सही बात का कौन विश्वास करेगा, सब लोग मुझे ही चोर बतायेंगे । मुझमें दोष न होने पर भी प्रभाव मिटानेवाली दरिद्रता के कारण मुझे ही ( दोषी ) लगाया जायगा ॥ १५ ॥



( प्रविश्य )

ब्राह्मणी—रन्णिण् ! रन्णिण् ! आअच्छ । णहि सुणान्ति । क्वाडसद्द  
दाय करिस्स । ( तथा करोति । ) [ रदनिके ! रदनिके ! आअच्छ । न हि  
शणोति । क्वाडशब्द तावत् करिष्यामि । ]

बेनी—ह, क्वाडसद्दो विअ । भट्टिणारिआ म सद्दावेण्णि । ( परिक्रम्य )  
भट्टिणारिण्ण । एअ म्हि । [ ह क्वाडशब्द इव । भर्तृदारिका मां शदापयति ।  
भर्तृदारिके ! इयमस्मि । ]

ब्राह्मणी—ण परिक्रमणे ण घायादिदो अप्यउत्तो अप्यमेत्तेओ वा ।  
[ न परिक्षतो न ब्यापादित आर्यपुत्र आर्यमैत्रयो वा । ]

बेनी—कुसली भट्टिणारओ अप्यमेत्तेओ अ । जो तस्स जणस्स  
अलङ्कारो चोरेण गहीणे । [ कुसली भर्तृदारक आर्यमैत्रेयथ । यस्तस्य जनस्या  
लङ्कारधोरेण गृहीत । ]

ब्राह्मणी—किं मणसि चोरेण गहीण्णि । [ किं मणसि चोरेण गृहीत  
इति । ]

बेनी—अहं इ । [ अयं किं । ]

निष्प्रभावा = निरात प्रभाव यस्या सा एवभूता हरिद्रता = दैन्यम् शङ्कनीया =  
इशानीया अथात् समस्य शङ्का स्थानम् भवतीति भाव ॥ १५ ॥

( प्रवेश कर )

ब्राह्मणी—रदनिक ! रदनिक ! आआ । नहीं सुनती हो । तय मं दरवाजा  
घटपटाऊँगी । ( घमा हीं करती है । )

बेनी—यह क्वाट क शब्द की तरह ( धावाज भा रही है ) । भर्तृदारिका  
मुझसे कुछा रही हैं ? ( घूमकर ) भर्तृदारिक ! मैं यहाँ हूँ ।

ब्राह्मणी—आयपुत्र अथवा मैत्रेय आहत या मार तो नहीं गए ?

बेनी—आयपुत्र और मैत्रेय जनों सकुशल हैं । केवल उनका भूयग चोर  
चुरा ले गया ।

ब्राह्मणी—क्या यह रही है चोर ले गया है ?

बेनी—हाँ

ब्राह्मणी—किंणु खु तस्स जणस्स दादव्वं भविस्सदि । अह्व एदं दइस्सं । ( कर्णौ स्पृष्ट्वा ) हृद्धि तालीपत्त खु एद । सो दाणिं परिअओ म विलम्बेदि । किं दाणिं करिस्सं । ( विचिन्त्य ) मोदु, दिट्ठं । मम ब्वादिक्कुलादो लद्धा सदसइस्समुल्ला मुत्तावली । तं पि अय्यलत्तो सोढीरदाए पडिच्छदि । मोदु, एवं दाव करिस्सं ( निष्कान्ता ) [ किन्तु खलु तस्मै जनाय दातव्य भविष्यति । अथवैतद् दास्यामि । हा धिक् तालीपत्र खल्वेतत् । स इदानीं परिचयो मा विडम्बयति । किमिदानीं करिष्यामि । भवतु, दृष्टम् । मम ज्ञातिकुलाद् लब्धा शतसहस्रमूल्या मुक्तावली । तामप्यार्यपुत्रं शौटीरतया प्रतीच्छति । भवतु, एव तावत् करिष्यामि । ]

विदूषक—इमस्स अन्धआरुप्पादिदस्स अवराहस्स किदे भवन्तं सीसेण पसादेमि । दाणिं मे हत्ये पडिच्छदु अत्तभव । [ अस्यान्धकारोत्पादितस्यापराधस्य कृते भवन्त शीर्षेण प्रसादयामि । इदानीं मे हस्ते प्रयच्छत्वत्र भवान् । ]

नायक—किं भवानिदानीं मा बाधते ।

भवांस्तावदविश्वासी शीलज्ञो मम नित्यश ।

शौटीरतया = अभिमानेन, आभिजात्येन हेतुना वा प्रतीच्छति किम् = प्रहीष्यति किम् ? इति प्रश्नकाकु अर्थात् स्त्रीधनत्वात् न प्रहीष्यति इति भाव ।  
अन्धकारोत्पादितस्य = अन्धकारे उत्पादितस्य इत्यर्थ ।

भवानिति—यदि मम शीलज्ञ—शील स्वभाव जानाति इति शीलज्ञ,

ब्राह्मणी—अब उस वसन्तसेना को क्या दिया जायगा ? अथवा इसको दे दूंगी । ( कानों को स्पर्श करके ) हाय ! यह तो तालपत्र का कर्णभूषण है । आभूषणों के पुराने परिचय मुझे कष्ट दे रहे हैं । तब मैं इस समय क्या करूँ ? ( चिन्ता करके ) अच्छा, मैंने उपाय सोच लिया । मुझे अपने सम्बन्धियों से सहस्रमूल्य वाली 'मुक्तावली' मिली है । क्या उसे भार्यपुत्र स्वकुल के अभिमान से चोहेंगे ( अर्थात् लेंगे ) ? अच्छा, तब ऐसा ही करूंगी । ( निकल जाती है । )

विदूषक—मैंने अंधेरे में आपको अलंकार देकर जो अपराध किया उसके लिए सिर नवाकर आपको प्रसन्न करता हूँ । इस समय आप उसे मेरे हाथ में दें ।

नायक—आप मुझे ( इन शब्दों से ) क्यों पीड़ित कर रहे हैं ?

आप मेरे दैनिक कर्म एवं स्वभाव से सुपरिचित हैं तथापि मेरे ऊपर अविश्वास

किं पुन स कलाजीवी वञ्चनापण्डिता जज्ञ ॥ १६ ॥ ५१९३

विदूषक — मण्ये मां मन्मथगण कुम्भालस्म हत्य निष्ण । (विष्ण  
स्तिष्ठति । [ मय मया मन्मथगण कुम्भीलस्य हस्त दत्तम् । ] टीका १५

( प्रविश्य )

प्राज्ञाणी—रन्धिण्ये । अव्यमेत्तेअ सहावहि । [ रदनिक । आयमैत्रय  
शब्दापय । ]

चेरु—अव्यमेत्तेअ । भट्टिदारिका तुम सहावन्ति । [ आर्यमैत्रय ।  
भट्टिदारिका त्वा शब्दापयति । ]

विदूषक—भोन्ति । किं म । [ भवति । किं माम् । ]

चेटा—आम् । [ आम् । ]

विदूषक—एम आञ्छामि । [ एष आगच्छामि । ] ( उपसर्पति । )

प्राज्ञाणी—अव्यमेत्तेअ । इम पड्डिगाह पड्डिगण्ह । [ आयमैत्रेय ।  
इम प्रतिग्रह् प्रतिग्रहाण । ] ५१९४

नियत = नित्यरुमज्ञ भवान् ( मयि ) अविधासा तावत् ( तदा ) कलाजीवी =  
अभिनयादिकलीपजीवी वञ्चनापण्डित = परवञ्चनायां पण्डित = प्रवीण जन =  
वसन्तसेनारूप चेरुयाजन किं पुन विश्वामी भवन् ? न कदाचिदपि मा विश्वसेन्  
न्ति भाव ॥ १ ॥

प्रतिग्रहम् = दानम् ।

कर रहे हैं तो अभिनयात् कला की समझ तथा वञ्चना कला में पण्डित वसन्तसेना  
मरा कैसे विश्वास करेगी ? ॥ १६ ॥

विदूषक—तब मानता हूँ कि मुझ कम्यकन ने उसे चोर के हाथ में दे दिया ।  
( दुःखी होकर बैठ जाता है । )

( प्रवेश कर )

प्राज्ञाणी—रन्धिके ! आर्य मत्रेय को बुलाओ ।

चेरु—आर्यमैत्रेय ! भट्टिदारिका आपका बुला रही हैं ।

विदूषक—ओ माननीया क्या मुझको बुला रही हैं ?

चेरु—हां ।

विदूषक—बह म आना है । ( समीप जाना है । )

प्राज्ञाणी—आर्यमत्रेय ! यह दान ग्रहण करें ।

विदूषक—अवस्थाविरुद्धो खु अजं पदाणविभवो । कुटो एदस्स आगमो । [ अवस्थाविरुद्ध खन्वय प्रदानविभव । कुत एतस्वागम । ]

ब्राह्मणी—ण सट्ठि उववसामि । सर्वसारविभवेण बन्धुरेण सोत्थि वाअइदठ्व त्ति एसो इमस्स आगमो । [ ननु षष्ठीमुपवसामि । सर्वसार-विभवेण ब्राह्मणेण स्वस्ति वाचयितव्यमित्येवोऽस्यागम । ] अपने प्रविष्ट

विदूषक—अट्टमी खु अज्ज । [ अष्टमी खत्वय । ] धन ६॥

ब्राह्मणी—प्रमादादो अदिक्कमो किटो । अज्ज पूआ णिण्वत्तीअदि । [ प्रमादाद् अतिक्रम कृत । अथ पूजा निर्वर्त्यते । ]

विदूषक—अणणुरुवदाए पदाणस्स अणुक्कोसो विअ पडिभादि । ( जनान्तिकम् ) रदणिए । कि करिस्सं । [ अननुत्पतया प्रदानस्यानुक्कोण इव प्रतिभाति । रदनिके ! कि करिष्यामि । ] परिस्थिति प्र. नि. प्र. ५००

चेटी—( अपवार्य ) किणु खु तस्स जणस्स दादव्व भविस्सदि त्ति

प्रदानविभव = प्रदानस्य विभव = सपत्त तथा ।

सर्वसारविभवेण सर्वेषां सार एवभूत विभव तेन ।

जनान्तिकम्—जनान्ते = पात्रगणमध्ये यदन्योन्यामन्त्रण परस्परमालाप-स्तज्जनान्तिक भवति, यथोक्त दर्पणे—'अन्योन्यामन्त्रण यत् स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम्' इति अननुत्पतया = प्रदानस्य अवस्थाविरुद्धतया इत्यर्थः । अनु-क्कोश = दया ।

विदूषक—दान की यह सपत्ति इम अवस्था के अनुकूल नहीं है । यह कहा से मिली है ? दिन पूरा हो तो ?

ब्राह्मणी—मैं षष्ठी के दिन उपवास गृह्णीते हूँ । ऐसी परिस्थिति में मैं अपने सर्वश्रेष्ठ विभव के द्वारा ब्राह्मण से स्वस्ति पाठ कराना चाहती हूँ । यही इम ( उपहार ) का कारण है ।

विदूषक—आज तो अष्टमी है ।

ब्राह्मणी—प्रमाद के कारण दिन का ध्यान नहीं रहा हो । आज पूजा करनी है ।

विदूषक—अवस्था विरुद्ध होने के कारण यह दान दया की भाँति मालूम हो रहा है । ( जनान्तिक में ) रदनिके ! क्या करें ?

चेटी—( मद्यको न सुनाकर ) बसन्तसेना को क्या देगा—इसी निमित्त से

अग्निमित्त भट्टिदारओ सन्तप्पत्तिं ति भट्टिदारिआ तव हत्ये  
 इडअ अय्यउत्त अगिरिण करिस्सामिं ति एव करेदि । ता गण्ह  
 एद । [ किन्नु एल्लु तस्मै जनाय दातव्यं भविष्यतीत्यतन्निमित्तं भर्तृदारक  
 मतप्यत इति भर्तृदारिका तव हस्ते दत्त्वाऽऽर्यपुत्रमनृणं करिष्यामीत्यथ करोति ।  
 तद् गृह्णाणतत् । ]

प्राज्ञणी—उत्तसम्भ्रदाए मुक्तावलीए तव अदुल्लहदाए उवआरो  
 विस्सरिदो । गण्ह एद । ( ददाति । ) [ उदकसम्भवतया मुक्तावल्यास्तव च  
 कर्मतयोपचारो विस्मृत । गृह्णाणतत् । ]

विदूषक—( गृहीत्वा ) सख्यं दाव विट्ठु । रोदिन्नि विअ होडीए  
 तिट्ठी । [ नवं तावन् तिष्ठतु । रोदित्वा भवत्या दृष्टि । ]

प्राज्ञणी—देवउल्लधूमेण रोदाविदा । [ देवउल्लधूमेन रोदिता । ]

विदूषक—साविदारि तत्तहोवा च्चान्दत्तेण, जइ वल्लिअ मणासि ।  
 [ शापितासि तत्रभवता चारुदत्तेन यथलीक मणासि । ]

अनृणम् = ऋणरहितम् इत्यर्थः ।

उदकसम्भवतया—उदकात् = सलिलात् सम्भव = उत्पत्तिर्यस्या सा तस्या  
 भाव तया ।

देवउल्लधूमेन—देवकुलस्य = मन्दिरस्य धूमेन अह रोदिता इति भावः ।

स्वामी सतत हो रहे हैं इसीलिए भर्तृदारिका आपके हाथ में यह ( मुक्तावली )  
 दवर स्वामी को अर्पणमुक्त करना चाहती हैं । भत आप इसे ले लें ।

प्राज्ञणी—मुक्तावली की उत्पत्ति जल से हुई तिस पर भी आपके दर्शन उचित  
 समय पर न हो सके । इसलिये हम मंत्र द्वारा आपका सत्कार करना शुरू गई  
 थी । इस ग्रहण करें । ( दे देती है । )

विदूषक—( ग्रहण करके ) ये सय रहने दीजिए । आपकी आँखें मानो रो  
 रही हों ।

प्राज्ञणी—देव-मन्दिर का पुँजा मुझे रुका रहा है ।

विदूषक—आप चारुदत्त के नाम की शपथ है यदि आप हट चोडोगी ।

ब्राह्मणी—हृद्धि । ( निष्कान्ता । ) [ हा धिक् । ]

विदूषक—एसा वाभाए दुक्खं रक्खिअ अस्सूहि सूइअ गआ ।  
( उपगम्य ) भो ! इदं । [ एषा वाचा दु ख रक्षित्वाऽश्रुभि सूचयित्वा गता ।  
भो ! इदम् । ]

नायक—किमेतत् ।

विदूषक—सरिसकुलदारसग्रहस्स फलं । [ सदशकुलदारसग्रहस्स  
फलम् । ]

नायक—कि ब्राह्मणी मामनुकम्पते ।

विदूषक—एवं विअ । [ एवमिव । ]

नायक—धिगात्मानम् । अद्य हतोऽस्मि ।

मयि द्रव्यक्षयक्षीणे स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः ।

सदशकुलदारसग्रहस्य—सदशम् = समान योग्य वा कुलम् इति सदश  
कुलम् दाराणा = स्तीणा सग्रह इति दारसग्रह सदशकुलात् दारसग्रह इति  
सदशकुलदारसग्रह तस्य ।

मयि इति—मयि द्रव्यक्षयक्षीणे—द्रव्यक्षयेण = धननाशेन क्षीण = दुर्बल  
एवभूते सति स्त्रीद्रव्येण = स्वकीयभार्याया मुक्तावलीरूपद्रव्येण = धनेन अनु  
कम्पित = यथाकाले माहात्म्यप्रदानेन दयाविषयीकृत । पुरुष = पौरुषगुणाभय

ब्राह्मणी—हा धिक् ! ( निकल जाती है । )

विदूषक—इस वाक्य से दु ख का सवरण करके और भाँसुओं द्वारा सूचन  
देकर चली गई ।

( नायक के समीप जाकर ) भो ! यह देखिये ।

नायक—यह क्या है ?

विदूषक—उपयुक्त कुल की पत्नी मिलने का यह फल है ।

नायक—क्या ब्राह्मणी ने मेरे ऊपर दया की है ?

विदूषक—ऐसा ही है ।

नायक—सुखी धिक्कार है । आज मर गया ।

मैं धन के नाश होने से दुर्बल दशा में स्त्रीरूप द्रव्य से अनुकम्पित हुआ हूँ ।

अथतः पुरुषो नारी या नारी साऽर्थतः पुमान् ॥ १७ ॥

विदूषक—तत्तद्दोषी हिअपण तुम याचेदि । अह सीसेण याचेमि ।  
अह एन् । [ तत्रभवती हृदयन त्वां याचते । अह शीपेण याचे । गृहान्तत् । ]

नायक—तथा । ( गृहीत्वा ) वयस्य । इमा मुक्तावलीं गृहीत्वा  
वसन्तसेनाया सकाशा गच्छ ।

अर्थेषु काममुपलभ्य मनोरथो मे

स्त्रीणा धनेष्वनुचितं प्रणयं करोति ।

माने च कार्यकरणे च विलम्बमाना

धिग्भाः । कुलं च पुरुषस्य दरिद्रता च ॥ १८ ॥

विदूषक—अहो अप्पमुल्लस्स सुण्णभण्डअस्स किदे सदसहस्स

अथतः = वस्तुतः नारीकायवशान् सम्पद्यते । एव वा साहाय्यनिधायिनी नारी  
सा अथतः = कर्मतः पुमान् = पुरुषमदृशी कार्यकाले पुरुषवन् कायकरणान् ॥ १७ ॥

अर्थेषु इति—मे = मम मनोरथः अर्थेषु = धनविषयेषु कामम् = यथेष्टम्  
सन्नुष्टिम् इजर्ष उपलभ्य = प्राप्य अद्युना माने = स्वर्गीयमानरक्षणे च कर्तव्य  
करणे = यासप्रत्यपणरूपकृतन्यकरणे विलम्बमाना सन् = कालज्ञेप दुर्जन स्त्रीणां  
धनेषु अनुचितम् = अयोग्यम् प्रणयम् = आसक्तिम् करोति = दशयति इति  
आशयः । अतः पुरुषस्य कुलम् = उच्चकुलं दरिद्रता च धिक् ॥ १८ ॥

सचमुच यहाँ पुरुष नारीतुल्य हो गया और नारी वास्तव में पुरुष हो गई ॥ १७ ॥

विदूषक—माननीया माझणी हृदय से आपको चाहती हूँ और मैं नत मस्तक  
द्वारा । अतः इसे आप ग्रहण करें ।

नायक—येसा ही हो । ( ग्रहण कर ) मित्र ! इस मुक्तावली की लेकर वसन्त  
सेना के पास जाओ ।

धन के विषय में मेरा मनोरथ अथवा सुख को पाकर इस समय ( स्वर्गीय )  
मानरक्षा करने में और कतम्ब ( न्यास प्रायण रूप ) काय को करने में विलम्ब  
होता हुआ बखर गिर्यों के धन में अनुचित अनुराग दिया रहा है । अतः  
इस मर्यादा से बहर उच्चकुल तथा दरिद्रता ( दोनों ) को धिक्कार है ॥ १८ ॥

विदूषक—अहो ! अप्पमूल्यवाले सुवणभाण्ड क लिप् दात सदस ( एक लाख )

मुल्ला मुक्तावली णीआदइव्वा । [ अहो अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डरूपा  
कृते शतनहस्रमूल्या मुक्तावली निर्यातयितव्या । ]

नायक — वयस्य । मा मैवम् ।

यं समालक्ष्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु कृतस्तया ।  
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्य प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

( निष्क्रान्ता सर्वे । )

तृतीयोऽङ्कः ।



यमिति—तया = धनन्तमेनया यम् = दृढम् विश्वासम् = प्रत्ययम् ममा  
लक्ष्य = मनसि उद्भाव्य, उद्दिश्य वा अस्मासु = धनहीनजनेषु न्यास = स्वर्ण  
भाण्डनिकेप कृत । तस्य = पूर्वोक्तस्य महत = प्रधानभूतस्य प्रत्ययस्य =  
विश्वामस्य मूल्यम् = मूल्यस्वरूपम् एतन् = मुक्तावलीरूपम् द्रव्यम् प्रदीयताम् ॥ १९ ॥

तृतीयोऽङ्क समाप्तः ।



मूल्यवाली यह मुक्तावली क्यों दी जानी चाहिये ?

नायक — मित्र । ऐसी बात मत कहो ।

जिस विश्वाम के ऊपर उसने ( वस्तुन्तसेना ) मेरे पास धरोहर रक्खी, उस  
महान् विश्वाम का मूल्यस्वरूप यह 'मुक्तावली' तुम उसे दोगे ॥ १९ ॥

( मथने सब चले जाने हैं । )

॥ तीसरा अङ्क समाप्त ॥





चेटी—किं एद वेसवासजणो सव्वो दक्खिणो होइ सि । पेस्खदु  
अज्जुआ, चम्पआरामे पिचुमन्दा जाअन्ति । अदिसरिस ति मम  
हिअअ अहिरमदि । परमत्थदो एद्व पसंसीअदि, णं कामदेवो ।  
[ किमेतद् देशवासजन सर्वो दक्षिणो भवतीति । पश्यत्वज्जुका, चम्पआरामे  
पिचुमन्दा जायन्ते । अतिसदृश इति मम हृदयमभिरमते । परमार्थत एव  
प्रशस्यते, ननु कामदेव । ] निम्न १५। ५५।

गणिका—हज्जे ! सखीजणेण अवहसणीअत्तण अत्तणो परिहरामि ।  
[ हज्जे ! सखीजनेनापहसनीयत्वमात्मन परिहरामि । ] ६।५।५५।

चेटी—एद जुज्जइ । सखीजणसपत्तिओ गणिआजणो णाम । [ एतद्  
युज्यते सखीजनसपत्नीको गणिकाजनो नाम । ]

( तत प्रविशत्याभरणहस्ताऽपरा चेटी । )

चेटी—सुह अज्जुआए । [ सुखमज्जुकाया । ]

प्रवादं, पूरयन्ती = सार्थक कुर्वती, त्वम्, अलीक = मिथ्या ( 'अलीक त्वप्रिणेश  
वृते' इत्यमर ) भणसि ।

चम्पाकारामे = चम्पकोथाने । पिचुमन्दा = निम्बवृक्षा इत्यर्थ ।

अपहसनीयत्वम् = उपहास्यत्वम् ।

सखीजनसपत्नीक —समान पतिर्यस्या इति सपत्नी, सखीजन सपत्नी  
यस्य स ।

चेटी—क्या सब घेर्याएँ दृष्ट हुआ करती है ? माननीये, देखिये । चम्पको-  
थान में निम्बवृक्ष भी उत्पन्न हो गये हैं । यह चित्रगत व्यक्ति उसके ( चारुदत्त  
के अत्यन्त अनुरूप है । एतदर्थ इस चित्र में मुझे यद्वा भानन्द मिल रहा है  
अर्थात् मेरा मन इसमें रम रहा है । वास्तव में मे इसकी प्रशंसा करती है ।  
सचमुच में इसका रूप प्रशंसा के योग्य है, लगता है जैसे कामदेव ही हो ।

गणिका—भरी ! मैं सखीजनों के द्वारा अपना उपहास नहीं चाहती ।

चेटी—ठीक कह रही है । सखीजन तो गणिकाजन के सपत्नी स्वरूप ही हैं ।

( उनके बाद गणिका काय में निम्न दुःख-संगीतानी का प्रवेश । )

चेटी—श्रीमतीजी, ( वसन्तसेने ! ) आप कुशल से तो हैं ?

गणिका—हूँजे ! साअद दे । [ हूँजे ! स्वागत ते । ]

चेटी—अञ्जुए ! अत्ता आणवेदि—इद दुघार पविटठ पोक्कर उवावत्तिद पहवण । ता तुवरमाणमण्डणा गहीदावटणणा आअच्छदुत्ति । इह अलङ्कार अलङ्कारेदु अञ्जुआ । [ अञ्जुके ! अम्बाऽऽशापयति—इद द्वार प्रविष्ट पौष्करमुपार्थित प्रवहणम् । तत् त्वरमाणमण्डना गृहीतावगुण्डनाऽऽगच्छत्विति । इहालङ्कारमलङ्कारोत्वञ्जुका । ]

गणिका—किं अय्यचारुदत्तो मण्डइस्सिदि । [ किमार्यचारुदत्तो मण्डयिष्यति । ]

चेटी—णहि, जेण अलङ्कारो पेसिठो सो राजसालो सण्ठाणो । [ न हि यनालङ्कार प्रेषितः स राजस्याल सस्यान । ]

गणिका—अपेहि अविणीदे ! । [ अपेक्षचिनीते । ] ६८७

पौष्करम् = पद्माकरसन्निवेशम् इति भावः । उपार्थितम् = आगतम् सुसजितम् वा प्रवहणम् = गोशकटम् स्त्रीजनोचितगोयानम् इत्यर्थः । त्वरमाणमण्डना—त्वरमाण मण्डन यस्या सा । गृहीतावगुण्डना—गृहीतम् = धृतम् अवगुण्डन = बाध्यावरणम् यया सा ।

सस्यान = ( कामवासनादिदोषैः ) स्थीयतेऽस्मिन् इति अधिकरणे ल्युट् सस्यानमस्त्यस्मिन्निति अर्शादित्वाच्च सस्यान एतन्नामकः ।

अपेहि = दूरमपसर इति भावः । कुत्सित सस्यान सस्यानक ( कुसायां कप्रत्यय ) राज स्याल इति भावः ।

गणिका—भरी ! तुम्हारा स्वागत हो ।

चेटी—मानमीये अम्बा आज्ञा दे रही है कि तुम्हारे द्वार पर कमलवज्र से अंकित प्रवहण ( = बैलगाड़ी ) आया हुआ है । अतः आपको शीघ्र ही अलङ्कृत हो जाना चाहिए और घूँ घट करके इस पर ( सवार होकर ) चला जाना चाहिए । य रहे अलङ्कार आप इन्हें धारण कर लें ।

गणिका—क्या भाय चारुदत्त मुझे अलङ्कृत करेंगे ?

चेटी—नहीं जिसने अलङ्कार भेजा है वह राजा का साला सरथान है ।

गणिका—ओ भविष्यत ! दूर हटो !

चेटी—पसीददु पसीददु अब्जुआ । सन्देसं खु अहं मन्तेमि ।  
( पादयो पतार्त । ) [ प्रसीदतु प्रसीदत्वज्जुका । सन्देश खत्वह मन्त्रये । ]

गणिका—उट्ठेहि उट्ठेहि । कुसन्देस असूआमि, ण तुवं । [ उत्तिष्ठो-  
त्तिष्ठ । कुसन्दंशमसूयामि, न त्वाम् । ]

चेटी—किं अहं अत्त भणामि । [ किमहमम्बा भणामि । ]

गणिका—भणेहि अत्त—जटा अग्र्यचारुदत्तो अभिसारइद्वो तदा  
मण्डेमि त्ति । [ भणाम्बा—यदाऽऽर्यचारुदत्तोऽभिसारयितव्यस्तदा मण्ड  
यामीति । ]

चेटी—तह । ( निष्क्रान्ता । ) [ तथा । ]

( तत प्रविशति सज्जलक । )

सज्जलक —

कृत्वा निशायां वचनीयदोषं निद्रां च हित्वा तिमिरं भयं च ।  
स एव सूर्योदयमन्दवीर्यं शनैर्दिवाचन्द्र इवास्मि भीतः ॥ १ ॥

कृत्वेति—निशायाम् = रात्रौ, निद्रा, तिमिरम् = अन्धकारम्, भयं च,  
हित्वा = त्यक्त्वा, वचनीयदोषम् = चौर्यरूपदोषम्, कृत्वा न एवा, शनैः =  
मन्द मन्दमित्यर्थे, सूर्योदयमन्दवीर्यं ( यन )—सूर्यस्य उदयेन मन्दम्=क्षीणम्,

चेटी—माननीये, प्रसन्न हों प्रसन्न हों । मे केवल सन्देश दे रही हूँ । ( पैरों पर  
गिर जाती हूँ ) ।

गणिका—उटो, उटो ! मे सन्देश को ही बुरा भग्न कह रही हूँ, न कि तुमको ।

चेटी—मैं अन्धा से क्या कहूँगी ?

गणिका—माता मे कहो कि जब मे चारुदत्त के पास जाऊँगी उस समय अपने  
आपको अलकृत दर्हूँगी ।

चेटी—अच्छी बात है । ( निकल जाती है । )

( नव मण्डलक का प्रवेश । )

सज्जलक—रात्रि मे निद्रा, अन्धकार और भय को छोड़कर तथा चौर्यरूप  
दोष करके यही मे इस समय सूर्योदय के कारण शनैः शनैः मन्दमान्ति वाले  
दिन के चन्द्रमा की भांति भयभीत हो रहा हूँ ( दिन में चोर गण निस्तेज एवं  
असहाय हो जाते हैं ) ॥ १ ॥

दिष्टया कर्मान्ते प्रभातम् । याद्यदिदानीं वसन्तसेनाया परिचारि  
काया मदनिकाया निष्क्रयाथ मयेद् कृतम् । (परिक्रम्य) इदं वसन्त  
सेनाया गृहम् । याद्यत् प्रविशामि । (प्रविश्य) किन्तु स्वल्पभ्यन्तरस्था  
मदनिका । अथवा, पूर्वाह्णे गणिकानामभ्यन्तरे साक्षिभ्यम् । अतस्तत्रैव  
तथा भवितव्यम् । यात्रच्छब्दापयामि । मदनिके । मदनिके । । ५५५५५

चेटी—(आकर्ष्य) सञ्जलअस्स विअ सरो । वावुदा अज्जुआ । ता  
उवसप्पिस्स । (उपगम्य) इअम्ह । [सञ्जलकस्य च स्वर । व्यापृताऽऽज्जुका ।  
तदुपसर्पिष्यामि । इयमस्मि । ]

सञ्जलक — इतस्तावत् ।

आकर्ष्य

चेटी—किं तुव सङ्घिदवण्णो विअ । [ किं त्व शङ्कितवण इव । ]

दुबल्म् वा धीर्यम् = पराक्रमम् सामर्थ्यम् यस्य स । दिवाचन्द्र = दिवा  
कालीन चन्द्र इव भीत अस्मिन् ॥ १ ॥

दिष्टया भाग्यक्रमेण मौभाग्यन इत्यथ । कर्मान्ते = मम चौर्यरूपमसमाप्तौ  
रात्या प्रभातम् जातम् इत्यर्थः । निष्क्रयाथ—निष्क्रयाय इदम् इति निष्क्रयाथम्=  
दासीन्वचनान्मोचयितुमिति भावः । (Deliverance By paying mon  
ey ransom) पूर्वाह्णे—पूषम् अहं इति पूर्वाह्णं तस्मिन् ।

व्यापृता = कार्ये व्यस्ता इत्यथ ।

शङ्कितवण इव—शङ्कित वण = आकृति यस्य स तद्वदिति भावः ।

सौभाग्यवश चौर्य क्रम के समाप्त होते ही सबेरा हो गया । इस समय  
वसन्तसेना की परिचारिका मदनिका जिसको मैं प्यार करता हूँ के उद्धार के  
लिये (अर्थात् गुलामी के बंधन से छुड़ाने के लिये) यह कार्य मैंने किया है ।  
(घूम करके) यह वसन्तसेना का घर है । तब प्रवेश करता हूँ । (प्रवेश कर)  
क्या मदनिका अन्दर है ? अथवा पूर्वाह्ण (= दिन के पहला पहर) में (वह)  
गणिकाओं के पास ही रहती है । अब यह वहीं होगी । तब उसे बुलाता हूँ ।  
मदनिका । मदनिके ।

चेटी—(सुनकर) सञ्जलक की सी आवाज है । आया तो भाग्य काय में  
बदलत है । तब मैं ही जाऊंगी । (समीप आकर) मैं यहाँ हूँ ।

सञ्जलक—तब यहाँ आओ ।

चेटी—पर्यो तुम शङ्कित की भाँति दीप रहे हा ।

चेटी—पसीददु पसीददु अब्जुआ । सन्देसं खु अह मन्तेमि ।  
( पादयो पतति । ) [ प्रसीदतु प्रसीदत्वब्जुका । सन्देश खस्वह मन्त्रये । ]

गणिका—उट्ठेहि उट्ठेहि । कुसन्देसं असूआमि, ण तुवं । [ उत्तिष्ठो-  
त्तिष्ठ । कुसन्देशमसूयामि, न त्वाम् । ]

चेटी—किं अहं अत्त भणामि । ( किमहमम्वा भणामि । )

गणिका—भणेहि अत्त—जदा अट्टयचारुदत्तो अभिसारइद्ववो तदा  
मण्डेमि त्ति । [ भणाम्वा—यदाऽऽर्यचारुदत्तोऽभिसारयितव्यस्तदा मण्ड  
यामीति । ]

चेटी—तह । ( निष्क्रान्ता । ) [ तथा । ]

( तत प्रविशति सज्जलक । )

सज्जलक —

त्यो र्थ

कृत्वा निशायां वचनीयदोषं निद्रां च हित्वा तिमिरं भयं च ।

स एव सूर्योदयमन्दवीर्यं शनैर्दिवाचन्द्र इवास्मि भीतः ॥ १ ॥

दृष्ट्वेति—निजायाम् = रात्रौ, निद्रा, तिमिरम् = अन्वकारम्, भयं च,  
हित्वा = त्यक्त्वा, वचनीयदोषम् = चौर्यपदोपम, कृत्वा स एवा, शनैः =  
मन्द मन्दमित्यर्थ, सूर्योदयमन्दवीर्यं ( मन )—सूर्यस्य उदयेन मन्दम्=क्षीणम्,

चेटी—माननीये, प्रसन्न हों प्रसन्न हों । मे केवल सन्देश वे रही हैं । ( पैरो पर  
गिर जाती है ) ।

गणिका—उठो, उठो । मे सन्देश को ही बुरा भाटा कह रही हैं, न कि तुमको ।

चेटी—मे अम्वा से क्या कहेंगी ?

गणिका—माता से कहो कि जब मे चारुदत्त के पास जाऊँगी उस समय अपने  
आपको अलङ्कृत रहेंगी ।

चेटी—अच्छी बात है । ( निकल जाती है । )

( नर मज्जलक का प्रवेश । )

सज्जलक—रात्रि में निद्रा, अन्धकार और भय को छोड़कर तथा चौर्यरूप  
दोष वगैरे उहाँ में दृष्ट समय सूर्योदय के कारण दान, दानं मन्दरान्ति गाले  
दिन के चन्द्रमा की भाँति भयभीत हो रहा है ( दिन में चन्द्र गण निस्तेज एव  
असहाय हो जाते हैं ) ॥ १ ॥

दिष्टया कर्मान्ते प्रभातम् । यात्रन्दिदानी यसन्तसेनाया परिचारि  
काया मदनिकाया निष्क्रयाथ मयेद् कृतम् । ( परिक्रम्य ) इद् यसन्त  
सेनाया गृहम् । यावत् प्रविशामि । ( प्रविश्य ) किन्तु स्वल्पभ्यन्तरस्था  
मवनिका । अथवा, पृथाहे गणिकानामभ्यन्तरे सान्निध्यम् । अतस्तत्रैव  
तया भवितव्यम् । यात्रच्छब्दाप्यामि । मदनिके । मदनिके । । ५०५५७

चेटी—( आरुण्य ) सज्जलअस्स विअ सरो । वावुदा अज्जुआ । ता  
उरसाप्पिस्स । ( उपगम्य ) इअम्हि । [ सज्जलकस्यव स्वर । व्यापृताऽज्जुका ।  
तदुपसापिप्यामि । इयमस्मि । ]

सज्जलरु — इतस्तायन् ।

आरुण्य

चेटी—किं तुय सङ्घिनवण्णो विअ । [ किं त्व शङ्कितवर्णं इव । ]

दुपलम् वा चौर्यम् = पराक्रमम् सामर्थ्यम् यस्य स । दिवाचन्द्र = दिवा  
कागिन चन्द्र इव भीत आत्मन् ॥ १ ॥

दिष्टया भाग्यक्रमेण मौभाग्येन इत्यथ । कर्मान्ते = मम चौर्यरूपकर्मसमाप्तौ  
सत्या प्रभातम् जातम् इत्यथ । निष्क्रयाथम्—निष्क्रयाय इत्म् इति निष्क्रयाथम्=  
दासीन्वयघनामोचमितुमित् भाव । ( Deliverance By paying mon  
ey ransom ) पूर्वाङ्के—पूषम् अह इति पूर्वाङ्क तस्मिन् ।

व्यापृता = काय गस्ता इत्यथ ।

शङ्कितवर्ण इव—शङ्कित वर्ण = आरुण्य यस्य स तद्वदिति भाव ।

मौभाग्यवश चौर्य कर्म के समाप्त होते ही सबेरा हो गया । इस समय  
घम-गमेना की परिचारिका मदनिका जिसको मैं प्यार करता हूँ के उद्धार के  
लिये ( अर्थात् गुलामी के बंधन से छुड़ाने के लिये ) यह काय मैंने किया है ।  
( घूम करके ) यह यस्तमेना का घर है । तथ प्रवेश करता हूँ । ( प्रवेश कर )  
क्या मदनिशा अन्दर है ? अथवा पूर्वाङ्क (= दिन के पहला पहर ) में ( वह )  
गणिकार्यों के पास ही रहती है । अत वह वहीं होगी । तथ उसे छुड़ाता हूँ ।  
मदनिके ! मदनिने !

चेटी—( सुनकर ) सज्जलरु की सी आवाज है । आर्या तो अथ काय में  
व्यस्त ह । तथ मैं ही जाऊगी । ( समीप आकर ) मैं यहाँ हूँ ।

सज्जलरु—एव यहाँ आओ ।

चेटी—पर्यो सुम शङ्कित की भांति दीय रहे हो ।

सज्जलक — न खलु, किञ्चित् कथयितुकामः ।

गणिका—हृजे ! इमं चित्तफलम् सअणीए ठावेहि । ( विलोक्य )  
 कर्हि गआ हदासा । अहव अदूरगआए होढब्धं । जाव ण पेक्खिस्सम्  
 ( परित्रम्यावलोक्य ) अम्मो इच्चं सा अटिसिणिद्धाए दिट्ठीए केण वि  
 मणुस्सेण पिवन्ती विअ सह मन्तअन्ती चिट्ठइ । तक्केमि एसो जो  
 कोवि कएण म याचेदि । [ हजे ! इदं चित्रफलकं शयनीये स्थापय । कुत्र गता  
 हताशा । अथवा अदूरगतया भवितव्यम् । यावन्नेना प्रेक्षित्वे । अम्मो इयं  
 माऽतिस्निग्धया दृष्ट्वा केनापि मनुष्येण पिवन्तीव सह मन्त्रयमाणा तिष्ठति ।  
 तर्क्याम्येष य कोऽपि क्रयेण मा याचते । ]

सज्जलक — श्रूयता रहस्यम् ।

गणिका—अजुत्त पररहस्स सोदु, अहं गमिस्स । [ अयुक्तं पररहस्यं  
 श्रोतुम्, अहं गमिष्यामि । ]

सज्जलक — अपि वसन्तसेना ( इत्यर्धोक्ते ) ।

गणिका—अहं अहिइदा एदाअ क्हाअ । होदु, सुणिस्सं दाव भवि-

कथयितुकाम — कथयितुं काम = अभिलाषो यस्य स ।

हताशा = हता = विनष्टा आशा यस्या मा । प्रेक्षित्वे = पश्यामि इत्यर्थः ।  
 क्रयेण = मूल्येन ।

सज्जलक—वस्तुतः ऐमा नहीं हैं, मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

गणिका—भरी ! यह चित्रफलक दाया पर रख दो । ( उधर उधर देखकर )  
 वह कम्बुरत कहाँ चली गई । अथवा यहीं कहीं पाम में ही है । तब तक इसे  
 देखती हूँ । ( घूमकर और देखकर ) ओ ! यह तो यहीं स्नेहभरी आँगों में  
 दंगती हुई किसी पुरुष से बात कर रही है । मैं अनुमान करती हूँ कि यह मुझे  
 पैसों से परीक्षा चाहता है ।

सज्जलक—रहस्य तो सुनो ।

गणिका—दूसरे का रहस्य सुनना असम्भव है । इसलिये मैं चली जाती हूँ ।

सज्जलक—वसन्तसेना भी होगी ( इस प्रकार अधूरा कहने पर )

गणिका—इस बात-चीत ने तो मैं भी सचिन्धित हूँ । अच्छा, मैं भी सुनूँगी

स्वदि । ( पुन प्रतिनिवृत्त स्थिता । ) [ अहमधिष्ठितस्या कथायाम् । भवतु धोयामि तावद् भविष्यति । ]

मन्त्रक — किं तस्यति त्या निष्क्रेण । द्रव्य विनिमय

गणिता—सो एव एतो । होदु, सुणिस्स । [ स एवैप । भवतु धोप्यामि । ]

चर्गी—सज्जलअ ! मम पदाण पुढम एव अज्जुआए उत । [ सज्ज लर । मम प्रदान प्रथममवाज्जुकोत्तम् । ]

मन्त्रक—तेन हीममस्यै प्रयच्छ, एव घत्तया च—

अथ तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मित ।

अप्रकाशया ह्यलङ्कारो मन्त्रेद्वाद् धार्यतामिति ॥ २ ॥

चर्गी—पेक्खामि तव । [ पर्यामि तावत् । ]

सञ्चलक—गृह्यताम् । ( दशयति । )

चर्गी मन्त्रेण  
अप्रकाशयति

निष्क्रेण = द्रव्यविनिमयन ।

अथमिति—अथम् अप्रकारम् = चौर्यप्राप्तत्वात् । जनसमीपे प्रकाशयितुम् अयोग्य गोपनीय इति भाव अलङ्कार तव = वसन्तसेनाया शरीरस्य प्रमाणात् इव प्रमाण कृत्वैवेति भाव ( अथलोपे एषा पद्ममी बोद्धया ) निर्मित = स्वर्ण कारण विनिर्मित मन्त्रेण—मयि स्नेहहेतो त्वया धार्यताम् = धारण क्रिय ताम् शृण्वताम् इति ॥ २ ॥

( यह धार्तालाप चाह जिस ढंग की हो ) [ फिर घूमकर स्थित होती है ] ।

सञ्चलक—बधा ( वसन्तसेना ) ऐसे से तुम्हें देगी ?

गणिव।—यह तो बधा ( ध्यक्ति ) है । अच्छा मैं सुनूंगी ।

वे १—सञ्चलक, आर्या मुझे पहले ही देने को कह रक्खा है ।

सञ्चलक—तब इसे उर्हें दे दो और कहो कि—गुप्त रखने योग्य यह अलङ्कार तुम्हारे शरीर क प्रमाण स ही मानों निर्मित हुआ है । अतः मुझ में भ्रम होने के कारण तुम्हें इसे धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

वे १—तब इसे मैं देखूंगी ।

सञ्चलक—हो । ( अलङ्कार को दिखाता है ) ।



चेटी—दिट्टपुरुवो विअ अअ अलङ्कारो । [ दृष्टपूर्व इवायमलङ्कार । ]

गणिका—ममकेरओ विअ अअ अलङ्कारो । [ मदीय इवायमलङ्कार । ]

चेटी—भणाहि भणाहि । को इमस्स आअमो । [ भण भण । कौट्या-  
गम । ]

सज्जलक — त्वस्नेहात् साहस कृतम् ।

उभे—ह, साहसिओ । [ ह, साहसिक । ]

असत्तेना... स प्राने

चेटी—( आत्मगतम् ) आ, अञ्जुआए खु इमस्स आइदी कम्मजारुण-  
दाए उव्वेअणीआ सवुत्ता । ( प्रकाशम् ) हद्धि मम किट्ठे उभअ त्तमइदं  
सवुत्त—तव शरीर चारित्त च । [ आ, अञ्जुश्या सत्वस्याकृति कर्म-  
दारुणतयोद्देजनीया सवृत्ता । हा धिम् मम कृते वभन सशयित सवृत्त—तव  
शारीर चारित्र च । ]

सज्जलक अहं

त्वस्नेहात्—तव त्वयि वा स्नेह = 'पपुराग तस्मात् हेतो । साहसम्=  
चौर्यरूपदम् इत्यर्थः ।

हम् ( हुम् ) इति स्वीकारार्थमव्ययम् ।

अस्य = सज्जलकस्य आकृति = आकार अञ्जुश्या = गणिकाया, वगन्त-  
सेनाया इति भाव ( समुखे ) कर्मदारुणतया = चौर्यादिकूरकर्महेतो, उद्देजनीया=  
उद्देजयतीत्युद्देजनीया ( वर्तन्ति अनो गत् ) उद्देगसम्पादिता, क्षोभणीया इति भावत् ।  
सवृत्ता = सजाता । उभयम् = द्वयम्, शरीर चारित्रमिति उभय मत्कृते सजयितम्=  
सशययुक्तम् सवृत्तम् = जातम् ।

चेटी—यह ( अलङ्कार ) पहले देना गया हो ऐसा मालूम हो रहा है ।

गणिका—यह आभूषण मेरे अलङ्कार की भाँति प्रतीत हो रहा है ।

चेटी—कहो, कहो । यह अलङ्कार तुम्हें कहाँ से उपलब्ध हुए हैं ?

• त्वत्क- तुम्हारे स्नेह के कारण ऐसा मालूम किया ।

धोनों—साहसे । साहसी ।

चेटी—( स्वगत ) अहा, इसकी आकृति चौर्यरूप दारुण कर्म करने के कारण  
माननीया ( वसन्तसेना ) के समस्त उद्दिग्ध-सी हो गईं । ( प्रकाश रूप से )  
हाथ धिक् ! मेरे लिये तुम्हारे शरीर एवं चरित्र दोनों मद्देहयुक्त हो गए ।

सञ्जलक—उन्मत्तिके । साहसे उल्लु श्रीवसति ।

बेगी—अपण्डितो खु सि । को हि णाम जीविणेण सरीर विक्कीणि स्मदि । अह कस्स गेहे इअ त्तिस्सामवञ्चना विदा । [ अपण्डित उचमि । को हि नाम जीवितेन शरीर विक्कयति । अय कस्य गेहे इय विक्कामवचना कृता । ]

सञ्जलक—यथा प्रभाते मया श्रुत—श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति सायवाह पुत्रश्चारुत्तो नाम ।

उभे—हुम् ।

सञ्जलक—अयि,

विपादस्तसर्वाङ्गी

सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना

विपादस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना ।

मृगीव शरविदाङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे ॥ ३ ॥

श्रेष्ठिचत्वरे—श्रेष्ठिना—वणिजानां चत्वरे = निवासस्थाने ( लक्षणया अय मर्या धीदृश्य ) । सायवाहपुत्र—वणिकपुत्र वैम्हण सायवाहो नैगमो वणिजो वणिक इत्यमर ।

विपादेति—विपादस्तसर्वाङ्गी—विपादेन = दुःखेन घस्तानि = शिथिली भूतानि सर्वाण्यङ्गानि यस्या सा सम्भ्रमेण = चञ्चलतया उत्फुल्ले = विक्रमिते तादृशे लोचने = नयने यस्या सा शरविदाङ्गी—शरेण = बाणेन विद्धम् तादृशम् अङ्ग यस्या एवभूता मृगीव = हरिणीव ( भयान् ) त्वम् कम्पसे = वेपसे ( मां ) च अनुकम्पसे = दयसे च ॥ ३ ॥

सञ्जलक—उन्मत्तिके । साहस ( उद्योग ) में ही लक्ष्मी का निवास होता है ।

बेगी—तुम मूर्ख हो । कौन है जो जीते जी अपने शरीर को बेच देगा । विश्वासघात किया है ।

सञ्जलक—प्र त गाल जैसा मने सुना कि सेठों के महबले में सायवाह पुत्र चारुदत्त नामक बपति रहता है ।

गेनों—हाँ ।

सञ्जलक—प्रिये विपाद से श्रत चञ्चलता के कारण विकसित नयनों वाली तथा शर ( बाण ) से विद्ध शरीर वाली मृगी की तरह ( भय से ) तुम कांप रही हो और दया भी कर रही हो ॥ ३ ॥

चेटी—दिष्टपुरुषो विअ अअ अलङ्कारो । [ दृष्टपूर्व इवायमलङ्कार । ]

गणिका—ममकेरओ विअ अअं अलङ्कारो । [ मदीय इवायमलङ्कार । ]

चेटी—भणाहि भणाहि । को इमस्स आअमो । [ भण भण । क्लोऽस्या-  
गम । ]

सजलक—त्वत्स्नेहात् साहस कृतम् ।

उभे—ह. साहसिओ । [ ह. साहसिक । ]

चेटी—( स्वात्मगतम् ) आ अज्जुआए खु इमस्स आइदी कम्मदारुण-  
दाए उठ्वेअणीआ सवुत्ता । ( प्रकाशम् ) हद्धि मम किंहे उभअ ससइदं  
संबुत्त—तव शरीर चारित्त च । [ शा. अज्जुकाया सत्त्वस्याकृति कर्म-  
दारुणतयोद्देजनीया सवृत्ता । हा धिग् मम कृते उभय सशयित सवृत्त—तव  
शारीर चारित्र च । ]

त्वत्स्नेहात्—तव त्वरि वा स्नेह = अनुराग तस्मात् हेतो । साहसम्=  
चौर्यरूपकम् इत्यर्थ ।

हम् ( हुम् ) इति स्वीकारार्थकमव्ययम् ।

अस्य = सजलकस्य आकृति = आकार अज्जुकाया = गणिकाया . वनन्त-  
सेनाया इति भाव ( सनुजे ) कर्मदारुणतया = चौर्यादिकूरकर्महेतो . उद्देजनीया=  
उद्देजयतीत्युद्देजनीया ( कर्तरि अनीगर् ) उत्तमसम्पादिका, क्षोभणीया इति भावत् ।  
सवृत्ता=सजाता । उभयम्=द्वयम् , शरीर चारित्रमिति उभय मत्कृते सशयितम्=  
सशययुक्तम् सवृत्तम् = जातम् ।

चेटी—यह ( अलङ्कार ) पहले देता गया हो ऐसा मालूम हो रहा है ।

गणिका—यह आभूषण मेरे अलङ्कार की भाँति प्रतीत हो रहा है ।

चेटी—कहो, कहो । यह अलङ्कार तुम्हें क्लेशों से उपलब्ध हुए हैं ?

• लङ्क- तुम्हारे स्नेह के कारण ऐसा साहस किया ।

शेनों—बाहरे ! साहसी ।

चेटी—( स्वगत ) भद्रा, इसकी आकृति चौर्यरूप दारुण कर्म करने के कारण  
माननीया ( वसन्तसेना ) के समान उद्दिग्मन्ती हो गई । ( प्रकाश रूप में )  
हाय धिक् ! मेरे लिये तुम्हारे शरीर एवं चरित्र दोनों सदैर्युक्त हो गए ।

सञ्जलक — उ मत्तिये । साहसे रलु श्रीयसति ।

बेगी—अपण्डितो खु सि । को हि णाम जीविणेण सरीर विक्कीणि स्मदि । अह कस्म गह इअ त्रिस्सामपद्धणा विन्ना । [ अपण्डित सबमि । को हि नाम जीवितेन शरीर विक्क्यति । अय कस्य गह इय विद्यामक्खना ठुता । ]

सञ्जलक — यथा प्रभाते मया श्रुत—श्रेष्ठिचत्तरे प्रतिवन्नति साययाह पुत्रश्चारुदत्तो नाम ।

उभे—हुम् ।

सञ्जलक — अयि, शिथिलीम् ।

विपादस्तन्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना ।

मृगीय शरविद्याङ्गी कम्पसे चानुकम्पसे ॥ ३ ॥

श्रेष्ठिचत्तरे—श्रेष्ठिना—वणिजाना चत्तर = निवासस्थाने ( लग्णया अय मयो बोद्धव्य ) । मायवाहपुत्र—वणिकपुत्र वैदहक मायवाहो नैगमो वणिजो वणिठ इत्यमर ।

विपादेति—विपादस्तसर्वाङ्गा—विपादेन = दुःखेन अस्तानि = शिथिली भूतानि सवाण्यज्ञानि यस्या सा सम्भ्रमेण = चञ्चलतया उत्फुल्ले = विकसिते तादृशी लोचने = नयने यस्या सा शरविद्याङ्गी—शरेण = बाणेन विद्धम् तान्गम् अङ्ग यस्या एवभूता मृगीय = हरिणीय ( भयान् ) त्वम् कम्पसे = घेपसे ( मां ) च अानुकम्पसे = दयसे च ॥ ३ ॥

सञ्जलक—उ मत्तिये ! साहस ( उद्योग ) में ही लक्ष्मी का निवास होता है ।

बेगी—तुम मूर्ख हो । कौन है जो जीते जी अपने शरीर को बेच देगा । विश्वासघात किया है ।

सञ्जलक—प्रसन्न काल जैसा मने सुना कि सेठों के महदुले न साधवाह पुत्र आरुदत्त नामक व्यक्ति रहता है ।

गेनो—हाँ ।

सञ्जलक—प्रिये विपाद से अस्त चञ्चलता के कारण विकसित नयनों वाली तथा शर ( बाण ) से विद्ध शरीर वाली मृगी की तरह ( भय से ) तुम कांप रही हो और क्या भी कर रही हो ॥ ३ ॥

बेटी—मरुच भणादि । मन्थवाहकुले माहम्य करन्तेण तुग कांशि कुतबुत्तो मन्थेण अन्थि परिक्खवेदा चायादिदो वा । [ गन्धे नण । मार्यवाह-  
कूदे माहम्य इवेता न्थया कश्चिन् हल्लपुत्र मन्थेणास्ति परिक्खता व्यापादितो वा । ]

गणिका—सुदुट्टु, मण वि पुच्छिद्धव्व पदाण पुच्छिद्धं । [ गन्धु, मयापि प्रच्छब्देगया पृष्ठम् । ]

गजजलक—मदनिके ! एतावत् किं न पर्याप्तं, द्वितीयमायकार्यं कार्यामि । न मन्थत्र शस्त्रेण कश्चिन् परिक्खतो व्यापादितो वा ।

बेटी—मज्जलज्ज ! मरुचं । [ गजजलक ! मन्थम् । ]

गजजलक—मन्थम् ।

बेटी—माहु मज्जलज्ज ! पिअ मे । [ मरुचं गजजलक ! प्रियं मे । ]

गजजलक—किं किं प्रियमत्याह । ईहण मदनिके !

स्वत्स्नेहवद्धदयो हि करम्यकार्यं

सन्तुष्टपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रभूतः ।

एतावत् किं न पर्याप्तम् = अर्थात् मया अपहृतं नन तत्र नोपाय किं न पर्याप्तमस्ति, तदा द्वितीयमपि श्रमार्थं = मन्थेण मारणरूपं कूरकम् अपि करिष्यामि ? इत्यादि नैव ।

स्वत्स्नेहेति—गन्तुष्टपूर्वपुरुषे = गन्तुष्ट पूर्वपुरुषे वस्मिन् एवभूते

बेटी—टीक = उहो । गणिककूट मे माहम्य करन्ते दुष्प तुमने किम्प कूटपुत्र को दाख के प्रहार मे घायल ना नहीं किया है ?

गणिका—अच्छा, मुझे भी यही पूछना वा, जो इमने पूछा है ।

मरुच—मदनिके ! क्या ( तुम्हारी प्रसन्नता के लिये ) इतना पर्याप्त नहीं है ? क्या दूसरा अकार्य ( दाख मे मारण रूप उर्म ) भी करेगा ? मेरे चीरकरूप कम मे कोश भी दाख-दाख मे घायल नहीं हुआ है ।

बेटी—गजजलक ! क्या यह सत्य है ?

मरुच—बिरुद्ध सत्य है ।

बेटी—माहु मज्जलक ! मावु । यह मेरे लिये अच्छा ही हुआ ।

मन्थत्र — क्या, क्या 'प्रिय' ऐसा कह रही हो ? क्या ऐसी बात है ?

त्रिय कूट मे परे पुरुष मर्यादोभावेन संतुष्ट थ ऐसे घन मे शपथ होकर भी तुम्हारे स्नेह के वशीभूत मे चीरदि उर्म करता है और काम मे अभिभूत अपने

रक्षामि ममथगृहीतमिदं शरीरं वत्सलम् ।  
मित्रं च मा व्यपदिशस्यपरं च यासि ॥ ४ ॥

चेत्री—सज्जलभ ! सुणाहि । अज्जुआए अब अलङ्कारो ।  
एव मित्र । [ सज्जलक । शणु । अज्जुआया अयमलङ्कार । एवमिव ।  
सज्जलक—एवम् ।

अज्ञानाद् या मया पूर्वं शाखा पत्रैर्वियोजिता ।  
छायार्थी ग्रीष्मसन्तप्तस्तामेव पुनराश्रित ॥ ५ ॥

शुले = वरो प्रसूत = उत्पन्न अपि त्वन्नेहबद्धहृदय — तव त्वयि वा स्नेहेन =  
प्रपन्ना बद्धम् = वशीभूतम् तत् तादृश हृदय - मनो यस्य स हि = निश्चयन  
अकार्यम् = चार्थादिनिन्दित कर्म करोमि । ममथगृहीतम्—ममथेन = काम  
दवेन गृहीतम् = अभिभूतम् इदं शरीरं रक्षामि ( परं तु त्वम् ) माम् = सज्जल  
कम् मित्रं = प्रियम् व्यपदिशसि = वाचा व्यवहरसि अपरं च । ( चारुदत्तम् )  
यासि = हृदयन प्रियतमम् अङ्गीकरोपि ॥ ४ ॥

अज्ञानादिति—अज्ञानात् = भ्रमवशात् मया या शाखा पूर्वम् पत्रै = पूर्ण  
वियोजिता = रिचीकृता पत्रवियोजनेन स्थाणुता गमिता इति भाव अर्थात् दुर्भा  
ग्यन वसन्तसेनाया एवायमित्यनभिज्ञोऽहम् अलङ्कारम् अपहृतवान् ग्रीष्मसन्तप्त—  
ग्रीष्ममालिन पीडित (अत एव) छायाार्थी=छायाज-यशोत्पलाभार्थी (सोऽहम्) तामेव

शरीर की भी रक्षा करता हूँ । सामने तो तुम मुझे मित्र ( वत्सलभ ) कहती हो  
फिर भी मन से किसी दूसरे ( चारुदत्त ) के साथ सवध जोड़ती हो ॥ ४ ॥

चटा—सज्जलक ! सुनो । माननीया ( वसन्तसेना ) का यह अलङ्कार है ।  
( कान म ) वह ऐसी बात है ।

सज्जलक—ऐसा है ।

अज्ञानवश मैंने जिस 'शाखा' को पहले पत्रों से रहित किया उसी का ग्रीष्म  
से सन्तप्त होकर छाया की ओर करते हुए मैंने आश्रय लिया है भावार्थ यह है  
कि मन्वानि से सन्तप्त होकर मैं जिस वसन्तसेना से मदनिका को मुक्ति दिलाना  
चाहा उसी वसन्तसेना का मैंने अलङ्कार अपहरण किया ॥ ५ ॥

१ यहाँ पर 'शाखा' शब्द से वसन्तसेना और 'पूर्ण' शब्द से धन की तुलना  
की गई है ।

गणिका—सन्तप्पट्टि न्ति तक्केमि एद्वेण अकख्यं किटं ति । [ सन्तप्पट्टि इति तर्क्याणि एतेनाकार्यं कृतमिति । ]

राजलक—मदनिके । एवं गते कि कर्तव्यम् ।

चेटी—तद्धि एव पिण्ड्यादेहि, ण्हि मण्टट्टरसदि अब्जुआ । [ तत्रैव निर्गत्य, नहि मण्डयिण्यज्जुका । ]

राजलक—अथेदानी सोऽमर्पान्मां चोर इति रक्षिपुरुषैर्माटयिष्यति चेदत्र कि करिष्यामि ।

चेटी—गा भाआहि गा भाआहि । कुलवुत्तो खु सो गुणाणं परितु-  
रसदि । [ गा विभीटि मा विभीटि । कुलवुत्त रालु रा गुणानां परितुप्यति । ]

गणिका—गाहु भदे । अवत्तव्यासि, अलक्किदा विअ एद्वेण वअणेण ।  
[ गाभु भदे । अवत्तव्यासि, अलक्किदा विअ एद्वेण वअणेण । ]

राजलक—रावथा न शक्याम्यहं तत्र गन्तुम् ।

( शानाम् ) पुन आश्रित = आश्रितवाग । अर्थात् घगन्तसेनापरिचारिकायां  
मदनिकायागनुरसंन गया न्याशरुपालद्वारापट्टरसोना घगन्तसेना विद्योजिता इति  
इतो' इत्थं सा गच्छ मदनिकं नैव रागर्गयिष्यति इति भावः ॥ ५ ॥

सन्तप्यते = सन्तापो भवति । अकार्यम् = असाधकार्यम् इत्यर्थः ।

रक्षिपुरुषं = रक्षिणस्य ते पुरुषस्य तं राजपुरुषं ( सिपाही इति भाषायां )

गणिका—उसने अपमानित कार्य किया है । एसीलिये पक्षात्ताप कर रहा है  
पेसा अनुमान करती है ।

राजलक—मदनिके । ऐसी परिस्थिति में क्या करना चाहिये ?

चेटी—हमें वहीं ( चारुदत्त के पास ) ले जाओ, माननीया ( पसन्तसेना )  
अपने आपको अलङ्कृत नहीं करेंगी ।

सज्जण—यदि इस समय गुरसे के कारण रक्षित-पुरुष ( पुलिस ) के द्वारा  
चोर समझकर मे पकड़ लिया गया, तब क्या करूंगा ?

चेटी—तुम डरो मत । चारुदत्त कुलीन है, अतएव गुणों से सम्पुष्ट होंगे ।

गणिका—साधुभद्रे ! तुम जालोचना नहीं कर रही हो, यद्वि क गुग्गारे तचन ने  
हम दोनों अलङ्कृत ही हुये हैं ।

सज्जण—मैं मर्पया घटा ( चारुदत्त के पास ) जाने में समर्थ नहीं होऊंगा ।

चेनी—अथ अण्णो उपाओ । [ अयमन्य उणय । ]

गणिका—एदे गुणा वसवासस्स । [ एते गुणा वेरावासस्य । ]

सज्जलक—कोऽय उपाय ।

चेनी—ण तत्र रूपञ्जा अज्जुआ अवि सत्थवाहपुत्तो अ । [ ननु तव रूपनाऽज्जुकाऽपि सायवाहपुत्रश्च । ]

एवमप्युक्तं वाच्यं

सज्जलक—न रलु ।

चेनी—तेण हि इम वाय अलङ्कार तस्स सत्थवाहपुत्तस्स वअणादो अज्जुआए णिय्यादेहि । एत च किदे तुत रक्खिदो, सो अय्यो अ अणिविण्णो भविस्सन्ति । अह च पीडिदा ण भविस्स । आदु अज्जुअ च पुणो यच्चिअ पुणो एव्व दासभावो भव । [ तेन हीम तावदलङ्कार तस्य सार्यवाहपुत्रस्य वचनाद्ज्जुकायै निर्यातय । एव च कृते त्व रक्षित स आयथानिर्विण्णो भविष्यति । अह च पीडिता न भविष्यामि । अथवा अज्जुका च पुनवचयित्वा पुनरेव दासभावो भवेत् । ]

३५१

अथवा अज्जुका

सार्यवाहपुत्र — सार्यवाहस्य = वणिज पुत्र = चारुदत्त इत्ययं तयो अज्जुका च = गणिका वसन्तसेनेति भाव तव रूपज्ञा-रूपम् आकृति गुणश्च जानातीति रूपज्ञा ।

तेन = तेन कारणेन सार्यवाहपुत्रस्य = चारुदत्तस्य वचनात् = वचनमा

चेटी—यह दूसरा उपाय है ।

गणिका—ये वेश्याओं के गुण हैं ।

सज्जलक—दूसरा उपाय क्या है ?

चेटी—निराशय ही तुम्हारे रूप एवं गुणों को आय चारुदत्त और श्रीमती वसन्तसेना भी जानती हैं ।

सज्जलक—नहीं ।

चेटी—इसलिये साधवाहपुत्र ( चारुदत्त ) क वचनों का आशय करके आर्या ( वसन्तसेना ) क लिये इस अलंकार को ले जाओ । इस प्रकार तुम भी वच जाओगे और यह ( चारुदत्त ) भी अलंकारों के खो जाने क हेतु दुःखी नर्हा होगा और मैं भी दुःखी नहीं होगी । यदि ऐसा न किया तो स्वामिनी की वञ्चना करने में दासी होना पड़ेगा ।



सञ्जलक — मदनिके ! प्रीतोऽस्मि ।

गणिका—भोदु अठमन्तरं पविसिअ उवविसामि । ( तथा करोति । )

[ भवन्वभ्यन्तरं प्रविश्योपविशामि । ]

चेटी—सञ्जलक ! आअच्छ, कामदेवउले म पडिवालेहि । अहं ओसर जाणिअ छज्जुआए णिवेदेमि । [ सञ्जलक ! आगच्छ, कामदेव-कुले ना प्रतिपालय । अहमवसरं दान्वाऽञ्जुकार्यं निवेदयामि । ]

सञ्जलक—चाढम् । ( निष्क्रान्तः । )

( ततः प्रविशत्यपरा चेटी । )

चेटी—सुहं अञ्जुआए । एसो सत्यबाहपुत्तस्स सआसादो कोषि वग्घणो आअदो अञ्जुअं पेक्खिदु । [ सुत्तमञ्जुकाया । एष सार्यबाहपुत्रस्य मन्त्रशान् कश्चिद् ब्राह्मण आगतोऽञ्जुका द्रष्टुम् । ]

गणिका—( सादरम् ) गच्छ, सिग्घ पवेसेहि णं । [ गच्छ, शीघ्रं प्रवेशयेन्मम् । ]

चेटी—तह । ( उपसृत्य ) एदु एदु अग्यो । [ तथा । एवेत्वार्यः । ]

श्रित्य इति भावः, वचनादिभ्यश्च ल्यब्योने कर्मणि पठ्यमा । 'अञ्जुकार्यं' इत्यत्र सम्प्रदाने चतुर्थी, निर्वृत्तयः = समर्पण, अनिर्विण्ण = प्रमत्तः ।

कामदेवकुले—कामस्य=मदनस्य उन्सवाय निर्मिते देवकुले=मन्दिरे इत्याशयः । सकागान् = मनीषान् ।

सञ्जलक—मदनिके ! मैं मुममे प्रसन्न हूँ ।

गणिका—अच्छा, भीतर घुमकर बैठ जाती हूँ । ( बैसा हो करती है । )

चेटी—सञ्जलक आओ और कामदेव के मन्दिर में मेरी प्रतीक्षा करो । मैं भवसर जानकर आयाँ ये निवेदन कर दूँगी ।

सञ्जलक—बिचकूल दीक । ( निकल जाता है । )

( इमं नटं दृश्यते दानी का प्रवेशः )

चेटी—आर्या का मगल हो । यह ब्राह्मण सार्यबाहपुत्र ( चारुदत्त ) के यहाँ से आया है, जो आपसे मिलना चाहता है ।

गणिका—( आदर के साथ ) जाओ वरने शीघ्र ही अन्दर लाओ ।

चेटी—ऐसा ही हो । ( मनीष जाकर ) आर्य ! आइये ! आइये ।

( प्रविश्य )

विदूषक—( सर्वतो विलोक्य ) अहो गणिआनाइस्म सस्मिरीअदा । पाणापट्टणसमागण्हेहि आअमिण्हि पुत्थआ चाइअन्ति । सओजअन्ति अ आहारप्पआराणि । धीणा दानीअन्ति । सुवण्णआरा अलङ्कारप्पआराणि आदरेण जोजअन्ति । [ अहो गणिकावाटस्य सधीकता । नानापट्टणममागतैरागमिण्वै पुस्तकानि वाच्यन्ते । सयोज्यन्ते चाहारप्रकारा । वाणा वाच्यन्ते । सुवर्णकारा अलङ्कारप्रकारानादरेण योजयन्ति । ]

चेटी—एसा अजुआ । उवसप्पदु अय्यो । [ एयाज्जुका । उपमर्ष स्वार्थ । ]

२॥१२॥

विदूषक—( उपगम्य ) सोत्थि होदीए । [ स्वस्ति भवत्यै । ]

गणिका—साअद अय्यस्स । हञ्जे । आसण अय्यस्स, पादोदअ च । [ स्वागतमायस्य । हञ्जे । आसनमायस्य पादोदक च । ]

गणिकावाटस्य = वेरयागृहस्य सधीकता—धिया = लक्ष्म्या शोभया वा सह वर्तमानम् इति सधीकम् तस्य भाव सधीकता = रमणीयता इति भाव । नानापट्टनसमागतै—नानाविधानि पट्टनानि = पत्तनानि नगराणि वा तन्म्य समागता तै आगमिकै आगम = आगमरूपशाल्ज त विदन्ति इति आगमिका तै । अर्थात् निगमागमशास्त्रस्य वेत्तार पुस्तकानि वाच्यन्ते = पठ्यन्ते इत्यर्थ ।

( प्रवेश कर )

विदूषक—( अपने भाप चारों ओर देखकर ) अहो ! गणिका के घर का यह आकषण एव सौन्दर्य ! विभिन्न नगरों से आए हुए शास्त्रों के वेत्ता लोग शास्त्रों का पाठ कर रहे हैं । नाना प्रकार के भोजनों का प्रवन्ध किया जा रहा है । धीणा घमाई जा रही है । सुनार ध्यान से नानाविध अलङ्कारों का निर्माण कर रहे हैं ।

चेटी—आयां यहाँ हैं ! आय स्वय समीप आयें ।

विदूषक—( समीप जाकर ) आपका मगल हो ।

गणिका—आय का स्वागत है । चेटी ! धीमान् भी के लिए आसन और पादाभ्यक्षो ।

विदूषक—( आत्मगतम् ) सर्व्वं आपणेतु वञ्जिअ भोजणं । [ सर्व्व-  
मानयतु वर्ज्जित्वा भोजनम् । ]

चेटी—जं अञ्जुआ आपणवेदि । ( आसन ददाति पादोदक च । )  
उवविसदु अय्यो । [ यदञ्जुकाज्ञापयति । उपविशत्वार्य्य । ]

विदूषक—( उपविश्य ) पडिच्छदु आसणं भोदी । अह किञ्चि  
भणिदुं आअदो । [ प्रतीच्छत्वासन भवती । अह किञ्चिद् भणितुमागतं । ]

गणिका—( उपविश्य ) अवहिदम्हि । [ अवहितास्मि । ] २१५५

विदूषक—केत्तिअमत्तं खु तस्स अलङ्कारस्स मुल्लप्पमाणं । [ किय-  
तात्र खलु तस्यालङ्कारस्य मूल्यप्रमाणम् । ]

गणिका—किणिमित्तं खु अय्यो पुच्छदि । [ किन्निमित्तं खत्वार्य्य-  
पृच्छति । ]

विदूषक—सुणादु भोदी । तत्तहोदो चारुदत्तस्स गुणप्पच्चाअण-  
णिमित्तं खु तुए अलङ्कारो त्तिहि णिक्खन्ती । सो तेण जूदे हारिदो ।  
[ शृणोतु भवती । तत्रभवतश्चारुदत्तस्य गुणप्रत्यायननिमित्तं खलु त्वयालङ्कारस्त-  
स्मिन् निक्षिप्तं । स तेन द्यूते हारितः । ] गुणे को प्रति मे २१५५

प्रतीच्छतु = गृह्णातु ।

अवहितास्मि = अवहिता-निविष्टचित्ता, सावधाना अस्मि ।

कि निमित्तम् = केन निमित्तेन इति भावः ।

गुणप्रत्यायननिमित्तम् गुणानां गुणेषु वा प्रत्यायनम् = प्रतीति इति गुण-

विदूषक—( स्वगत ) के भोजन को छोड़कर और सब कुछ ले आओ ।

चेटी—आर्या की जो आज्ञा । ( आसन और पैर धोने का जल देती है ) आर्य्य  
यहां बैठें ।

विदूषक—आप भी एक आसन पर बैठ जायें । मैं कुछ कहने के लिए आया हूँ ।

गणिका—( बैठकर ) मैं सुन रही हूँ ।

विदूषक—उन अलंकारों का कितना मूल्य हो सकता था ?

गणिका—आप किस लिये पूछ रहे हैं ?

विदूषक—आप सुनें । समाननीय चारुदत्त के गुणों से प्रभावित होकर आपने  
उनके पास अपने आभूषणों को धरोहर के रूप में रख दिया था, परन्तु वे उसे  
जुआ में हार गये ।

गणिका—जर्दे । जुब्नइ । तदो तदो । [ दूते । युज्यते । ततस्तत' । ]

विदूषक—तदो तस्स अलङ्कारस्स मुल्लभूद इम मुत्तावलिं पडि च्छद्दु भोदी । [ ततस्तस्यालङ्कारस्य मूल्यभूतामिमा मुक्तावली प्रतीच्छतु भवती । ]

गणिका—( आत्मगतम् ) धिक् खु गणिआभाव । लुद्धत्ति म तुल अदि । जइ ण पडिच्छे, सो एव्व दोसो भविस्सदि । ( प्रकाशम् ) आणोदु अट्यो । [ धिक् खलु गणिकामावम् । लु-धेति मा तुलयति । यदि न प्रतीच्छामि स एव दोषो भविष्यति । आनयत्वार्थं । ]

विदूषक—इद गणद्दु भोदी । [ इद गृह्यतु भवती । ]

गणिका—( गृहीत्वा ) पडिच्छिद तए त्ति अट्यो णिवेदेदु । [ प्रतीष्ट तयेत्यर्थो निवेदयतु । ]

विदूषक—( आत्मगतम् ) कोवि उवआरो वि ण एदाए भणिदो । ( प्रकाशम् । ) एव होदु । ( दस्वा निष्कान्त । ) [ कौट्युपचारोऽपि नैतया भणित । एव भवतु । ]

प्रत्यायनम् तदेव निमित्तम् यस्मिन् कर्मणि तत् यथा तथा । निश्चित = न्यास रूपेण स्थापित इति भाव । दूर्ते = पाशक्रीडायाम् हारित = जित ।

तुलयति = तुलया योजयति इति भाव ।

प्रतीष्टम् = स्वीकृतम् इत्यर्थः ।

गणिका—सुभा में ! ठीक है । तब क्या हुआ ?

विदूषक—तब आप उन अलङ्कारों के मूल्य में इस मुक्तावली को ग्रहण करें ।

गणिका—( स्वगत ) इस गणिकावृत्ति को धिक्कार है । जनता तो मुझे लालचो कहेगी । यदि न लूगी तब भी वही अपराध लगेगा । ( प्रकाश ) अच्छा दीजिये ।

विदूषक—आप इसे ग्रहण करें ।

गणिका—( ग्रहण कर ) कृपया भाय चारदस से निवेदन कर दीजियेगा कि वह मैंने इच्छापूर्वक स्वीकृत कर लिया है ।

विदूषक—( स्वगत ) इसने कुछ उपचार के रूप में भी नहीं कहा । ( प्रकाश ) पैसा ही हो । ( देकर निकल जाता है । )

गणिका—साहु चारुदत्त ! साहु । भाअघेअपरिवृत्तदाए दसाए  
माणवमाणं रक्खिदं । [ साधु चारुदत्त ! साधु । भागधेयपरिवृत्तताया  
दशाया मानावमान रक्षितम् । ]

( प्रविरय )

मदनिका—अब्जुए ! सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोत्तिव मणुस्सो  
आअदो इच्छइ अब्जुअं पेक्खिअं । [ अब्जुके ! सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात्  
कश्चिद् मनुष्य आगत इच्छत्यब्जुका द्रष्टुम् । ]

गणिका—किं दिट्ठपुरुवो णवदंसणो वा । [ किं दृष्टपूर्वो नवदर्शनो वा । ]

मदनिका—अब्जुए ! णहि, तस्सकेरओ त्ति मे पडिभादि । [ अब्जुके !  
नहि, तदीय इति मे प्रतिभाति । ]

गणिका—गच्छ, पवेसेहि ण । ] गच्छ, प्रवेशयैन्म् । ]

मदनिका—तह । ( निष्क्रान्ता । ) [ तथा । ]

गणिका—अहो रमणिब्जदा अब्ज दिवसस्स । [ अहो रमणीयताऽय  
दिवसस्य । ]

( तत प्रविशति मदनिका सज्जलकेन सह । )

भागधेयपरिवृत्ततायाम्—भागधेयस्य परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्याम्  
तस्याम् तथा ।

गणिका—वाह ! चारुदत्त, वाह ! भाग्य के विपरीत दशा में भी आपने मानवता  
की रक्षा की ।

( प्रवेश कर )

मदनिका—आर्ये ! सार्थवाहपुत्र के यहाँ से कोई व्यक्ति आया है और आपसे  
मिलना चाहता है ।

गणिका—वही है, अर्थात् पहले जो देखा गया था या दूसरा ।

मदनिका—माननीये ! ऐसा लगता है कि वह उसका निजी भादमी नहीं है ।

गणिका—जाओ और उसे अन्दर लाओ ।

मदनिका—ऐसा ही हो । ( निकल जाती है । )

गणिका—अहो ! आज का दिन तो बड़ा ही मनोरम है ।

( तव सज्जलक के साथ मदनिकाका प्रवेश )

मञ्जलकः—कष्टा खल्वात्मशङ्का नाम,

अपने आत्मने लगे

य कश्चिच्चकितगतिर्निरीक्षते मा

सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति स्थितो वा ।

सर्षोस्ताम्तुलयति दापता मनो मे

स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्किता मनुष्यः ॥ ६ ॥

मनुष्य -

मनुष्य

मदनिका—एसा अजुआ । उवसप्पदु अण्यो । [ एपाज्जुका ।

उपमर्षत्वार्यः । ]

सञ्जलक — ( उपसृज्य ) सुख भवत्यै ।

गणिका—साअन् अण्यस्स । हज्जे । आसण देदु अण्यस्स ।

[ स्वागतमार्यस्य । हज्जे ' आमन दीयतामार्याय । ]

सञ्जलक — भवतु भवतु । गृहीतमामनम् । त्वरिततरमनुष्ठेय किञ्चित्

कायमास्ति ।

आत्मशङ्का आत्मन शङ्का = मोहता खलु = निश्चयेन कष्टा नाम = कष्ट  
दायिका एव ।

य कश्चिच्चकित—य कश्चिन् चकितगतिं सन् चकितः = चबला प्रस्ता वा  
गतिं यस्य न मा निरीक्षते = पर्यति नम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति वा समीपे  
स्थितो भवति दोषतः = चौर्यदोषहेतो मे = मम मन सषान् तान् तुलयति  
अर्थात् मम दोषान् मां प्रहीनुमागता इति मन निर्णयति । हि = यत् मनुष्यः  
स्व दोषैः = अपराधैः शङ्कितो भवति ॥ ६ ॥

मञ्जलक—आत्मशङ्का ही तो कष्ट देनेवाली वस्तु है ।

जो व्यक्ति चकित होकर मुझे देखता है या मेरे समीप खड़ा हाता है तो  
चौर्यरूप अपराध के कारण मेरा मन सबको इस रूप से तोलता है कि कहीं  
एकदृजे न आ रहा हो । क्योंकि मनुष्य अपने ही दोषों से शङ्कित हुआ करता है ॥

मदनिका—माननीया यहाँ हैं । आय स्वयं समीप में आय ।

सञ्जलक—( समीप आकर ) आपका कल्याण हो ।

गणिका—आय का स्वागत है । आर्ये ! श्रीमान् को आसन दो ।

मञ्जलक—अच्छा अच्छा । आसन ग्रहण कर लिया परन्तु नीम सम्पादन  
योग्य कुछ काय है ।

गणिका—साहु चारुदत्त । साहु । भाअवेअपरिवृत्तदाए दसाए  
माणवमाणं रक्खिदं । [ साधु चारुदत्त । साधु । भागधेयपरिवृत्तताया  
दशाया मानावमान रक्षितम् । ]

( प्रविश्य )

मदनिका—अज्जुए ! सत्थवाहपुत्तस्स सआसादो कोच्चि मणुस्सो  
आअदो इच्छइ अज्जुअ पैक्खिदं । [ अज्जुके ! सार्थवाहपुत्रस्य सकाशात्  
कश्चिद् मनुष्य आगत इच्छत्यज्जुका द्रष्टुम् । ]

गणिका—किं दिट्ठपुरुवो णवदंसणो वा । [ किं दृष्टपूर्वो नवदर्शनो वा । ]

मदनिका—अज्जुए ! णहि, तस्सकेरओ त्ति मे पडिभादि । [ अज्जुके !  
नहि, तदीय इति मे प्रतिभाति । ]

गणिका—गच्छ, पवेसेहि ण । ] गच्छ, प्रवेशयैनम् । ]

मदनिका—तह । ( निष्क्रान्ता । ) [ तथा । ]

गणिका—अहो रमणिज्जदा अब्ज दिवसस्स । [ अहो रमणीयताऽय  
दिवसस्य । ]

( तत्त प्रविशति मदनिका सज्जलकेन सह । )

भागधेयपरिवृत्ततायाम्—भागधेयस्य परिवृत्तता = प्रतिकूलता यस्याम्  
तस्याम् तथा ।

गणिका—वाह ! चारुदत्त, वाह । भाग्य के विपरीत दशा में भी आपने मानवता  
की रक्षा की ।

( प्रवेश कर )

मदनिका—आर्ये ! सार्थवाहपुत्र के यहाँ से कोई व्यक्ति आया है और आपसे  
मिलना चाहता है ।

गणिका—वही है, अर्थात् पहले जो देखा गया था या दूसरा ।

मदनिका—माननीये ! ऐसा लगता है कि वह उसका निजी भादमी नहीं है ।

गणिका—जाओ और उसे अन्दर लाओ ।

मदनिका—ऐसा ही हो । ( निकल जाती है । )

गणिका—अहो ! आज का दिन तो बड़ा ही मनोरम है ।

( तत्र सज्जलक के साथ मदनिकाका प्रवेश )

मञ्जलक — कष्टा उत्त्वात्मशङ्का नाम,

अत आये मे शब्दे

यः कश्चिच्चकित्गतिर्निरीक्षते मा

सम्भ्रान्ता द्रुतमुपसर्पति स्थितो वा ।

सर्वान्तामनुलयति दोषता मनो मे

स्वैर्दोषैर्मेधति हि शङ्किता मनुष्य ॥ ६ ॥

मिथ्या है -  
यथा मे

मदलिका—एसा अनुआ । उपसर्पद्दु अय्यो । [ एकाग्रुद्ध । उपसर्पन्वाय । ]

मञ्जलक — ( उपसर्प ) सुप्र भरत्यै ।

गणिका—साअ अय्यस्स । हञ्जे । आसण षेदु अय्यस्म ।

[ स्वागतमार्यस्व । हञ्ज ' आसन दीयतामायाय । ]

मञ्जलक — मधतु मधतु । गृहीतमाननम् । त्वरिततरमनुप्रेय किञ्चित्

कायमास्त ।

आत्मशङ्का आत्मन शङ्का = भावता कलु = निश्चयन कष्टा नाम = कष्ट दायिका एव ।

यः कश्चिदिदिति—यः कश्चित् चकित्गति मन् चकित्ता = चकित्ता प्रस्ता वा गति यस्य न मां निरीक्षत = पश्यति सम्भ्रान्तो द्रुतमुपसर्पति वा मनीषे स्थितो भवति दोषता = चौयदोषहतो मे = मम मन सवात् तात् तुल्यति अथात् मम दोषान् मां प्रहीतुमागता इति मन निर्णयति । हि = यत मनुष्य स्व दोषै = अपराध शङ्कितो भवति ॥ ६ ॥

मञ्जलक—आत्मशङ्का ही तो कष्ट देनेवाली वस्तु है ।

जो व्यक्ति चकित होकर मुझे दन्वता ह वा मी समीप खड़ा हावा ह तो चौयदोष अपराध क कारण मेरा मन सबको इस रूप से सोचता है कि कहीं पकड़ने न आ रहा हा । क्योंकि मनुष्य अपने ही दोषों से शङ्कित हुआ करता है ॥

मदलिका—माननाया यहाँ है । आय स्वय समीप में जाय ।

सकलक—( समाप जाकर ) आपका कहयान हो ।

गणिका—आय का स्वागत है । आये । श्रीमान को आसन दो ।

मञ्जलक—अच्छा अच्छा । आसन ग्रहण कर लिया, परन्तु शीघ्र सम्पादन योग्य युद्ध काय ह ।



गणिका—एव भणादु अय्यो । [ एव, भणत्वार्थ । ]

सज्जलक—आर्यचारुदत्तेनास्मि प्रेषित—यस्तावदलङ्कारो मम हस्ते निक्षिप्त, स त्वसम्भोगमलिनतया गृहस्यासान्निध्यात् कौटुम्बिकानां दुरारक्ष । तद् गृह्यताम् इति ।

गणिका—इमं तस्स चारुदत्तस्स देदु अय्यो । [ इम तस्मं चारुदत्ताय ददात्वार्थ । ]

सज्जलक—भवति । न खल्वह गच्छामि ।

गणिका—अह जाणामि तस्स गेहे साहसं करिअ आणीदो अअ अलङ्कारो । तस्स गुणाणि अणुकम्पेदु अय्यो । [ अह जानामि तस्य गेहे साहस कृत्वानीतोऽयमलङ्कार । तस्य गुणाननुकम्पतामार्थ । ]

सज्जलक—( आत्मगतम् ) कथं विदितोऽस्म्यनया ।

असम्भोगमलिनतया—न सम्भोग = सस्कार, व्यवहारात् समाजनादिकम् इत्यर्थ, तेन मलिनं = धूलिधूसरित तस्य भाव तथा तथोक्तया । कौटुम्बिकानाम्—परिवाराणाम् असान्निध्यात्—न सान्निध्यम् इति असान्निध्यम् तस्मात् हेतो, अनुपस्थिते इत्यर्थ । दुरारक्ष = दु खेन रक्षितु योग्य इत्यर्थ ।

गणिका—तव आर्यं डसे कहें ।

सज्जलक—मुझे आर्य चारुदत्त ने भेजा है और यह सम्देश कहलवाया है कि जो अलङ्कार मेरे हाथ में धरोहर रूप में दिया गया था उसकी रक्षा करना कठिन है क्योंकि घर का ठीक से उपयोग न होने के कारण वह टूटी फूटी दशा में है ( चोर आसानी से प्रवेश कर सकते हैं ) और कुटुम्बी लोग भी पास नहीं रहते ( जिनसे चीजों की रक्षा हो पाती ) ।

गणिका—आर्य इसे चारुदत्त को दे दें ।

सज्जलक—माननीये । मैं नहीं जाऊंगा ।

गणिका—मैं जानती हूँ कि आर्य उनके घर में चौर्यरूप साहस कार्य करके इस अलङ्कार को लाये हैं । आपको उनके गुणों के साथ सहायुधनि तो दिखानी ही चाहिये ।

सज्जलक—( स्वगत ) क्या इसने मुझे जान लिया है ?

गणिका—को एत्थ, पवहण दाय अय्यस्स । [ कोऽत्र प्रवहण ताव दार्यस्य । ]

गणिका—येमिसद्धो विअ सुणीअन्नि । आअदेण पवहणेण होद्व्व  
[ नेमिराब्द एव ध्रूयते । आगतेन प्रवहणेन भवितव्यम् । ]

गणिका—( स्वैराभरणैर्मदनिकामलङ्कृत्य ) आरुहहु अय्यो अय्याए  
सह पवहणम् । [ आरोहत्वाय आर्यया सह प्रवहणम् । ]

मदनिका—अज्जुए ! किं एद । [ अज्जुके ! किमेतत् । ]

गणिका—मा खु मा खु एय मत्तिअ । अय्या खु सि दाणि सबुत्ता ।  
गण्हहु अय्यो । ( मदनिकं गृहीत्वा सज्जलकाय प्रयच्छति । ) [ मा क्षतु  
मा खल्वेव मन्त्रयित्वा । आर्यां पल्वसीदानीं सृत्ता । गृह्णात्वार्थम् । ]

सज्जलक—( आत्मगतम् ) भो ! कदा खल्वस्या प्रतिफलव्य भवि  
ष्यति । अथवा, शान्त शान्त पापम् ।

नर प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम् ।

प्रवहण तावद् आर्यस्य = आर्यस्य ( सम्बन्धे ) तावत् प्रवहणम् = शक्यम्  
आनीयताम् इत्यर्थः ।

नेमिराब्द = नेमे शब्द इत्यर्थः । चक्रधारा प्रधिर्नमि इति यादवः ।

नर इति—प्रत्युपकारार्थी = प्रत्युपकारमर्थयते इति प्रत्युपकारार्थी = उपका

गणिका—यहाँ कोई है ? भाय ( सज्जलक ) के लिए गाड़ी लाए ।

गणिका—नेमी का सा शब्द सुनाई पड़ रहा है । शायद कोई गाड़ी आ रही है ।

गणिका—( अपने अलंकारों से मदनिका को अलङ्कृत करके ) भाय ( आर्या =  
मदनिका ) के साथ इस गाड़ी पर सवार होइये ।

मदनिका—आर्ये ! यह क्या है ?

गणिका—ऐसी बात मत कहो । तुम इस समय झीमती हो गई हो । भाय  
ग्रहण करें ।

( मदनिका की लेकर सज्जलक को देती है । )

सज्जलक—( स्वगत ) भो ! इसके ( वसन्तसेना के ) उपकारों का बदला  
कय चुकाऊंगा । अथवा पाप शान्त हो ।

प्रत्युपकार करनेवाला प्राणी आपत्ति में फल का उपभोग करता है । किन्तु

द्विषतामेव ऽस्तु योऽस्या भवतु तस्य वा ॥ ७ ॥

( तथा सह निष्कान्त सज्जलक । )

गणिका—चउरिए ! ! [ चतुरिके ! ]

( प्रविश्य )

चेटी—अज्जुए ! इअम्हि । [ अज्जुके । इयमस्मि । ]

गणिका—हूऊजे ! पेक्ख जागरन्तीए मए सिविणो विट्ठो एव्वं ।

[ हूजे ! पश्य जाग्रत्या मया स्वप्नो दृष्ट एवम् । ]

चेटी—पिअ मे, अमुदकणाडअ सवुत्तं ! [ प्रिय मे, अमृताङ्कनाटक सवृत्तम् । ]

गणिका—एहि इम अलङ्कार गण्हिअ अय्यचारुदत्त अभिसरि-  
स्सामो । [ एहीममलकार गृहीत्वार्यचारुदत्तमभिसरिष्याव । ]

रिण प्रत्युपकारेच्छु, नर विपत्तौ = आपत्काले, फलम् = प्रत्युपकाररूपफलम्, सुयोगम् वा लभते = प्राप्नोति । परन्तु य = यादृश अस्या = वसन्तसेनाया, अस्य = चारुदत्तस्य वा विपत्काल अस्ति स द्विषताम् एव अस्तु अन्यो शत्रूणामेव ( शकारादीनाम् ) अस्तु मा भवतु = तस्य, तस्या वा मा भवतु इत्यर्थ ॥ ७ ॥

अमृताङ्कनाटकम्—अमृतम् = अमृतवत् सुखप्रद अङ्क यस्मिन् नाटके तत्

उसका ( चारुदत्त का ) और इसका ( वसन्त सेना का ) जो विपत्ति काल है, वह शत्रु को ही हो ॥ ७ ॥

( मदनिका के साथ सज्जलक का निष्क्रमण )

गणिका—चतुरिके !

( प्रवेश कर )

चेटी—माननीये ! मैं यहा हूँ ।

गणिका—आर्ये ! देखो, जागती हुई मैंने ऐसा स्वप्न देखा है ।

चेटी—प्यारी बात है । बहुत अच्छा । यह मेरे लिए अमृत से भरा नाटक जैसा सिद्ध हुआ ।

गणिका—आओ । अलकार को पहन कर आर्य चारुदत्त के पास अभिसरण करेंगे ।

बेनी—अ-जुए । तह । एद पुण अभिसारिआसहाअभूत् दुद्दिण उण्णमिण् । [ अज्जुके । तथा । एतत् पुनरभिमारिकामहायभूत् दुद्दिन मुत्तमितम् । ]

गणिका—हतासे । मा हु वड्ढावहि । [ हताय । मा सन्तु वर्षय । ]

चण—एदु एदु अ-जुआ । [ एवंचज्जुका । ]

( निष्पाते । )

चतुर्थोऽङ्क ।

अमृताङ्कम् अमृताङ्कम् तत् नाटकम् इति अमृताङ्कनाटकं सङ्गतम् = समाप्तम् ।  
गणेन प्रकृतनाटकस्य शुभमाप्तिं अपि सूच्यते ।

अभिमारिका सहायभूतम्—अभिमारिकाया सहायभूतम् = सहायतु-यम्  
दुद्दिनम् = घनाभरारो वृष्टिर्वा ( घनाभरारे वृष्टौ च दुद्दिनं कवयो विट् नि-  
मिदान्त ) उक्तमितम् = प्रादुर्भूतमुच्यते वा ।

इति चतुर्थोऽङ्क समाप्त ।

बेनी—आर्ये ! देवा ही हो । तो, फिर अभिसारिकानों का सहायक वह दुद्दिन  
( = काले बादल से घिरा हुआ दिन तथा घुरा दिन ) उभर आया ।

गणिका—अभागिन मेरे काम को अधिक उत्तम मत करो ।

चेटी—माननीये ! आइये, आइये ।

( ११ निवल जाती है । )

॥ चौथा अङ्क समाप्त ॥

## श्लोकानुक्रमणिका

अ०	श्लो०		अ०	श्लो०	
अकामा हियते	१	२५	तथा विभव	३	१२
अज्ञानाद् या	४	५	तरुणजनसहाय'	१	१७
अद्यास्य भित्तिषु	३	१०	एवस्नेहबद्धदयो	४	४
अभिनयति	१	१६	दारिद्र्यात् पुरुषस्य	१	६
अय तव शरीर	४	२	हुवेहि अग्नेहि	१	१०
अर्थेषु काम	३	१८	देशः को नु जला	३	८
अविज्ञातप्रयुक्तेन	१	२७	धिगस्तु खलु	३	१४
अक्षि वस्तु तिवस्त्रे	१	१५	नरः प्रत्युपकारार्थं	४	७
असौ हि द्रवा	३	३	मि श्वासोऽस्य	३	१३
आलाकविशाला	१	२१	परिचिततिमिरा	१	१३
ह्य हि निद्रा	३	४	भवांस्तावत्	३	१६
उत्कण्ठितस्य	३	१	मयि द्रव्यक्षयचीणे	३	१७
उदयति हि शशा	१	२९	भाजर् प्लवने	३	११
पुशा हि वाशू	१	२३	य समालक्ष्य	३	१९
पुपा रद्गप्रवेशेन	१	२४	य कश्चिष्कित	४	६
पुपा हि वयसो	१	२२	यत्र मे पतितः	१	२८
कः श्रद्धास्थति	३	१५	यासां बलिर्भवति	१	२
काम नीचमिद	३	६	रक्त च तारमधुर	३	२
काम प्रदोष	१	१८	लिभ्यतीव तमो	१	१९
किं त्व पदात्	१	११	लुब्धोऽर्थवान्	३	७
किं त्व भयेन	१	९	विभवानुवशा	१	७
किं याशि धावशि	१	८	विपादस्तसर्वाङ्गी	४	३
किं वाशुजेवे	१	१२	सत्य न मे धन	१	५
कृत्वा निशाया	४	१	स मद्विधाना	१	२६
कृत्वा शरीर	३	५	सिंहाश्रान्त	३	९
क्षीणा ममार्था	१	४	सुख हि दुःखा	१	३
घिदगुलदहि	१	१	सुलभशरणमाधयो	१	२०
जनयति खलु	१	१४			